श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

गौडीय सेनाधिपति श्रील श्रीजीवगोस्वामी प्रभुपाद विरचितः

संस्कृत टीका सहितम्

श्रीब्रह्म संहिता

हिन्दी अनुवाद सहित

गौडीयसम्प्रदायाचार्य
श्रीहरिदास शास्त्रीणा सम्पादितः

आधुनिक प्रतिलिपि संस्करण

पण्डित श्रीरघुनाथ दास शास्त्रीजी महाराज
व्याकरण,वेदान्तदर्शन,(श्रीधामवृन्दावन)

www.bhaktidarshan.org

Whatsapp +918218476676

※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

श्रीब्रह्मसंहिता

[पञ्चमोऽध्यायः]

श्रील श्रीजीवगोस्वामिकृता टीकोपेता
हिन्दीटीकया चालङ्कृता

श्रीवृन्दाबनधामवास्तव्येन
न्याय-वैशेषिकशास्त्रिन्यायाचार्यकाव्यव्याकरणसांख्य
मीमांसावेदान्ततर्कतर्कतर्कवैष्णवदर्शनतीर्थ
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादिता ।

सद्ग्रन्थप्रकाशक
श्रीहरिदासशास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदासनिवास,
कालीदह, वृन्दाबन, जिला—मथुरा ।
उत्तरप्रदेश

प्रकाशक :— * मुद्रक :—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,

श्रीहरिदास निवास,

कालीदह, वृन्दावन

मथुरा (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशनतिथि :—

शरत् पूर्णिमा

२६ आश्विन १३८८

१३ अक्टुबर १९८१

श्रीगौराङ्गाब्द ४९५

प्रकाशन सहयोग २७.००मुद्रा

U.S. Dollars— 3.00

प्रथमसंस्करणम्

* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *

———**———

विज्ञप्तिः

———**———

विश्वहितव्रती श्रीचैतन्यदेव,-श्रीहरिनाममाधुर्य्यास्वादन में विभोर होने पर भी प्राणीमात्रके कल्याण के निमित्त सदा अवहित थे, मानव को सत् शिक्षासे शिक्षित करने से ही समस्त व्यक्ति सुखी होंगे—इस उद्देश्य से ही दक्षिण देशस्थ तीर्थ भ्रमण के समय स्वयं असंग्रही होकर भी श्रीब्रह्मसंहिता एवं श्रीकृष्णकर्णामृत नामक ग्रन्थ द्वयका आनयन स्वयं किए थे, श्रीचैतन्यचरितामृतकार का कथन है-(श्रीचै० च० ६) मध्य।

ब्रह्मसंहिता कर्णामृत दुइ पुँथि पाइया
महारत्न पाइ आइला सङ्गे लइया।
शास्त्र सिद्धान्त नाहि ब्रह्म संहिता समान,
गोविन्द महिमा ज्ञानेर परम कारण।
अल्प अक्षरे कहे सिद्धान्त अपार,।।

भगवदीय मौलिक तत्त्व सिद्धान्त की भित्ति ब्रह्मसंहिता के अभ्यन्तर में निहित है, अतः यह ही तत्त्व शिक्षा का प्रकृष्टतम ग्रन्थ है। श्रीकृष्णकर्णामृत में अनुराग पूर्ण भजन शिक्षा का निदर्शन है। ब्रह्मसंहिता, शताध्यायी होने पर भी उसका साररूप पञ्चम अध्याय मात्र ही उपलब्ध है, इस में प्रधानतः सर्व कारण तत्त्व(१)धामतत्त्व (२-५) शक्ति शक्तिमत्तत्त्व (६-७) प्रजासृष्टि (८) महाविष्णु (१० नारायण, (११-१४) विष्णु प्रजापतिशम्भु (१५) अहङ्कारात्मकविश्व (१६) योगनिद्रा (१७) सृजनेच्छा ब्रह्मोत्पत्ति (१८-२१) चतुर्म्मुख-ब्रह्मा (२२) सृजनेच्छा (२३) काम गायत्री प्राप्ति, कामवीज काम गायत्री का तात्पर्य्य (२४) तप २५) माधुर्य्य मय श्रीकृष्णतत्त्व (२६) गायत्री मन्त्र से ब्रह्माका द्विजत्व संस्कार (२७) वेदसार के द्वारा केशव की स्तुति (२८) गोलोकीयलीला (२९-३१) परम अचिन्त्य

वैभव (३२) भक्तजनलभ्यत्व (३३-३४) अचिन्त्यशक्ति (३५) तद्भाव भावित हृदय प्राप्य (३६) स्वकीय परकीय विचार (२७) ध्यानयोग अवतारीतत्त्व (३९) ब्रह्मतत्त्व (४०) मायातत्व (४१) कामतत्त्व (४२) पञ्चदेवोपासना, श्रीदुर्गा (४४) श्रीशिव (४५) विष्णु (४६) कारणार्णव शायी (४७) महाविष्णु (४८) सूर्य्य (४९) श्रीगणेश (५०) तत्त्व समूह (५१) सूर्य्य (५२) समस्त पदार्थ की स्थिति (५३) कर्मानुरूप फलदान (५४) भजन विचार (५५) परमधामवर्णन (५६-५७) महत्व विज्ञान, प्रजासृजन के उपयोगी पञ्चश्लोक (५७) प्रेम भक्ति (५८) भक्तिलाभ का उपाय (५९) भक्ति का श्रेष्ठत्व (६०) शरणागति तथा आचरण (६१) सार संक्षेप (६२) इत्यादि विषय समूह इस में अतिसुन्दर, सरल सहज भाव से लिपिवद्ध हैं।

एतत् सह श्रीजीवगोस्वामीपाद रचित दिग्दर्शिनी टीकामुद्रित है, श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीकृत टीका दुष्प्राप्य है। टीका के मङ्गला-चरण में श्रीजीव गोस्वामीपादने लिखा है--ऋषिगणों के स्मृतिग्रन्थ आपात दृष्टि से दुर्योजनाप्रतीत होने से भी उत्तम रूपसे विचार करने पर वह युक्तार्थ समन्वित ही है, अतएव ऋषिगणों के ग्रन्थ विचार में ऋषियों के ऋषि चतुःसनात्मक श्रीरूप सनातन ही मेरी गति है। यद्यपि यह ब्रह्मसंहिता शताध्यायी है, तथापि प्रस्तुत पञ्चाध्याय सब के सूत्र रूप हैं, समग्र ग्रन्थ का तात्पर्य्य इस में ही निहित है। श्रीमद् भागवतादिग्रन्थ में सूक्ष्मबुद्धि विशिष्ट व्यक्तिगण जिस सिद्धान्त को अवलोकन करते हैं उक्त समस्त सिद्धान्त ही इसमें यथावत् प्रकाशित है। श्रीकृष्ण सन्दर्भ में जिस की आलोचना विस्तृत रूप से हुई है, इस ग्रन्थ की टीका में उस विषय का वर्णन पुनर्वार करने का अवसर आने से ही इस की व्याख्या में मेरी प्रवृत्ति हुई। प्रथम श्लोक का तात्पर्य इस प्रकार है--श्रीकृष्ण-समस्त अवतारों के मूल अवतारी स्वयं भगवान् हैं। "कृष्ण" उनका मुख्यनाम है। नाम करण के समय श्रीगर्ग ने प्रथमतः "कृष्ण" नाम का ही निर्देश किया था। मूलमन्त्र में भी कृष्ण नाम का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ है। ग्रन्थ में

'गोविन्द' नाम का उल्लेख है, वह गवेन्द्रत्व रूप अर्थ का प्रकाशक है, गो=इन्द्रिय, गो, सूर्य्यादि ग्रह निचय, वाक्य, इत्यादि का अधिनायकत्वरूप है। 'आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य श्लोक से भी श्री-कृष्ण में कर्त्तृत्व एवं सर्वोत्कर्षगुण विद्यमान होने से उनका श्रीकृष्ण नाम ही मुख्य है-यह प्रतिपन्न हुआ है। यहाँ "कृष्ण" पद विशेष्य है, अन्यान्य पद विशेषणहै, रूप, गुण, माधुर्य्यादि के द्वारा सर्वाकर्षक आनन्दमूर्त्ति ही श्रीकृष्ण है। आप ही परतमतत्त्व स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन हैं, आप सर्व शक्तिमान् ईश्वर हैं। उन के श्रीविग्रह अप्राकृत, नित्य चैतन्य आनन्द स्वरूप है, जीवादि के समान मायिक नहीं है। आप अनादि काल से स्वीय नित्य लीलाभूमि श्रीवृन्दावनादि में नित्य विराजमान हैं, आप गोचारण लीला बिनोदी होने से गोविन्द हैं। अनेक शास्त्रों में अनन्त ब्रह्माण्ड के मूल कारण का निर्णय अनेक प्रकार से होने से भी श्रीकृष्ण ही सर्व शास्त्र समन्वय से सर्व कारणों का मूल कारण निर्णीत हुए हैं, इस ग्रन्थ में धामतत्त्व, परिकरतत्व लीला रहस्य श्रीविग्रहतत्त्वादि वर्णित है। टीका के उपसंहार में आपने कहा है, शताध्याय सम्पन्ना यह संहिता श्रीब्रह्मा के द्वारा श्री कृष्णोपनिषदों के सार समूह के सञ्चय से प्रकाशिता हुई है। यद्यपि बहुविध पण्डित गण इस संहिता का पृथक् पृथक् पाठ एवं विविध अर्थादि के कल्पना करते हैं, तथापि मैंने साधुसज्जनानुमोदित मार्ग से जो कुछ प्राप्त किया है, उसको ही प्रमाण रूप से स्थापन कियाहै। अतः शिष्टजन का उद्घोष है--

श्रीचैतन्यमतानुगा बहुविधैस्तत्त्वैः समुद्भासिता,
सद्भक्तिप्रतिपालनी सुवचसा प्रेमार्थसंस्थापिका।
जीवातु र्हरिभक्तजीवनिचये चित्तश्रुतिप्रीतिदा,
श्रीजीवप्रतिभा जगद्विजयिणी सर्वैधिया धार्य्यताम्॥

हरिदास शास्त्री

॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः ॥

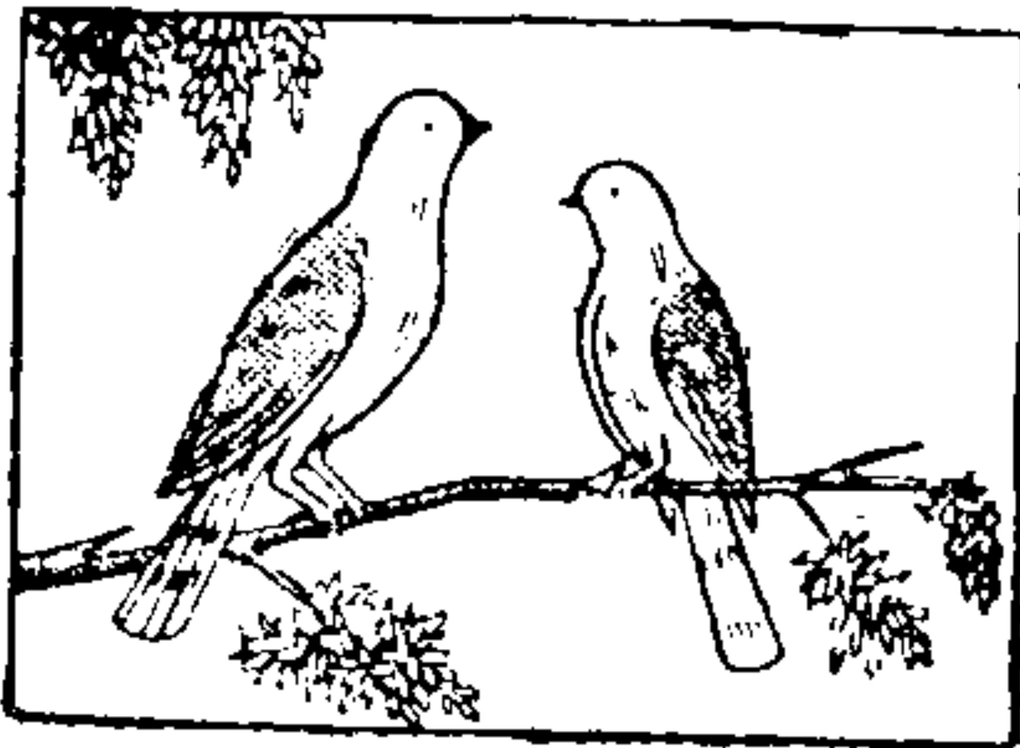
❀ ग्रन्थस्य-श्लोकानि ❀

इति श्रीब्रह्मसंहितायां भगवत्सिद्धान्तसंग्रहे
मूलसूत्राख्यः पञ्चमोऽध्यायः ॥

※ टीकायामुद्धृतानि वाक्यानि— ※

पत्रसंख्या







❋❋ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❋❋

——❋❋——

श्रीब्रह्मसंहिता

[पञ्चमोऽध्यायः]

——:·~o❋❋o~·:——

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः ।
अनादिरादि र्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥१॥

कृष्णः, ईश्वरः, परमः, सच्चिदानन्द विग्रहः, अनादिः आदिः, गोविन्दः, सर्वकारणकारणम् भवति ॥ (१)

श्रीकृष्ण, परम ईश्वर हैं, सच्चिदानन्दविग्रह, अर्थात् उनकी श्रीमूर्त्ति, नित्य ज्ञानानन्द स्वरूप है, आप स्वयं अनादि हैं, अतः समग्र तत्त्व के अनादि हैं, आप सबके मूल हैं, आप के पहले अपर कोई तत्त्व नहीं हैं, आपका अपरनाम श्रीगोविन्द हैं, आप अनन्त जगत के समग्र कारणों के मूल कारण स्वरूप हैं ॥१॥

❋ श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ❋

सनातनसमो यस्य ज्यायान् श्रीमान् सनातनः ।
श्रीवल्लभोऽनुजः सोऽसौ श्रीरूपो जीवसद्गतिः ॥१॥
श्रीकृष्णरूप महिमा मम चित्ते महीयताम् ।
यस्य प्रसादाद् व्याकर्त्तुमिच्छामि ब्रह्मसंहिताम् ॥२॥

चतुःसनस्थ श्रीसनातन के सदृश जिन के अग्रज श्रीसनातन गोस्वामी है, श्रीवल्लभ जिनके अनुज है, वह श्रीरूपगोस्वामी ही श्रीजीव गोस्वामी का परमाश्रय है ॥१॥

श्रीकृष्ण रूप की महिमा मेरे चित्त में स्फुरित हो, जिनकी

दुर्योजनापि युक्तार्था सुविचाराद्‌षिस्मृतिः ।
विचारे तु ममात्र स्याद्‌षीणां स ऋषिर्गतिः ॥३॥
यद्यप्यध्यायशतयुक् संहिता सा तथाप्यसौ ।
अध्यायः सूत्ररूपत्वात्तस्याः सर्वाङ्गतां गतः ॥४॥
श्रीमद् भागवताद्येषु दृष्टं यन्मृष्टबुद्धिभिः ।
तदेवात्र परामृष्टं ततो हृष्टं मनो मम ॥५॥
यद् यच्छ्रीकृष्ण सन्दर्भे विस्ताराद्विनिरूपितम् ।
अत्र तत् पुनरामृश्य व्याख्यातुं स्पृश्यते मया ॥६॥

अथ श्रीमद्‌भागवते यदुक्तं "एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयमिति" तदेव प्रथममाह 'ईश्वर इति' अत्र कृष्ण इत्येव विशेष्यं, तन्नामएव' कृष्णावतारोत्सवेत्यादौ श्रीशुकादि महाजन प्रसिद्धया । "कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाये'त्यादौ नामोपनिषदि

प्रसन्नता से ही मैं ब्रह्म संहिताग्रन्थ की व्याख्या करने का अभिलाषी हूँ ॥२॥ उत्तम विचार से ऋषिशास्त्र, दुरूहार्थ होने पर भी समीचीन अर्थ बोधक होते हैं। समग्र ऋषियों के मूल तत्त्व द्रष्टा ऋषि ही इस कार्य में एकमात्र अवलम्बन हैं ॥३॥ यद्यपि ब्रह्म संहिता ग्रन्थ शतअध्ययात्मक हैं, तथापि, यह पञ्चम अध्याय उस शत अध्याय के सूत्र रूप होने से यह अंश ही सम्पूर्णाङ्ग ग्रन्थ है ।४।

परिमार्जित विवेकी व्यक्तिगण श्रीमद् भागवत प्रभृति ग्रन्थ में असमोर्द्ध रूप से जिस तत्त्व का अनुभव किये हैं, इस टीका ग्रन्थ में उसका ही विचार कर रहा हूँ। इस से मेरा मन अत्यन्त आनन्दित है. अर्थात् समग्र ऋषि शास्त्रों का सार सिद्धान्त प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्यमान है ॥५॥ जिस जिस विषयों का विस्तृत विचार श्रीकृष्णसन्दर्भ में मैंने किया है, उसका पुनर्वार अनुसन्धान करके ही इस की व्याख्या करना चाहता हूँ ॥६॥

श्रीमद्‌भागवत में कथित है, वर्णित अवतार समूह प्रथम पुरुष श्रीनारायण के अंश कला हैं, किन्तु श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं, तज्जन्य उनका प्रथम कार्य द्वारा परिचायक ईश्वर" शब्द का प्रयोग

च। प्रथमप्रतीतत्वेन तन्नामवर्गाविर्भावकृता गर्गेण प्रथममुद्दिष्टत्वेन तथा यं मन्त्रमधिकृत्य सोऽयमारम्भः तत्राग्रतः परिचितत्वेन मूलरूपत्वात् ※। तदुक्तं पद्मपुराणे प्रभासखण्डे नारदकुशध्वजसंवादे श्रीभगवदुक्तौ। "नाम्नां मुख्यतमं नाम कृष्णाख्यं मे परन्तपे"ति। अतएव ब्रह्माण्डपुराणे श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रे। "सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्या तु यत् फलं। एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति।" इत्यत्र श्रीकृष्णस्येत्येवोक्तं यत्त्वग्रे गोविन्दनाम्ना स्तोष्यते तत् खलु कृष्णत्वेऽपि तस्य गवेन्द्रत्ववैशिष्ट्यदर्शनार्थमेव। तदेवं रूढित्वेन प्राधान्यात्तस्यैवेश्वर इत्यादीनि विशेषणानि अथ–

हुआ है। इस श्लोक में कृष्ण शब्द ही विशेष्य है, कारण वह शब्द उनका ही नाम है। श्रीशुकदेवादि अभियुक्त महाजनों ने उन के आविर्भावोत्सव के विवरण में " कृष्णावतारोत्सव" शब्दका प्रयोग किया है, सामोपनिषद् में भी उक्त है, कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय। गर्ग मुनिने प्रथम प्रतीत रूप से कृष्णनाम का ही प्रयोग किया था, प्रथम उद्दिष्ट होने से तथा उनके मन्त्र में परिचायक शब्दों में अग्रणी शब्द मूलरूप से चिर परिचित शब्द कृष्ण ही है, पद्म पुराण प्रभास खण्ड में नारद कुशध्वज संवादस्थ श्रीभगवदुक्ति में व्यक्त है, हे परन्तप ! निखिल नामों में कृष्ण नाम ही मेरा मुख्यतम नाम है, अतएव ब्रह्माण्ड पुराण के श्रीकृष्णाष्टोत्तरशत नाम स्त्रोत्र में वर्णित है, पवित्र सहस्र नामों की तीनवार आवृत्ति से जो फल होता है, श्रीकृष्ण नाम की एक आवृत्ति ही उस फल को प्रदान करती है, यहाँपर कृष्ण शब्द का ही प्रयोग हुआ है, किन्तु अग्रिम ग्रन्थ में गोविन्द नाम के द्वारा जो स्तुति हुई है, उसका कारण है, कृष्ण होकर भी आप गोविन्द हैं, गोपाल लीला परायण हैं, इस वैशिष्ट्य को प्रकट करना है, अतएव कृष्ण शब्द रूढ़ि होने से ही वह शब्द प्रधान है, और उसका ही विशेषण. ईश्वर प्रभृति श्लोकस्थ शब्द समूह हैं, श्रीभगवन् नाम भगवान् के गुण एवं कर्म का प्रकाशक होते हैं, अतः गुण के द्वारा भी कृष्णशब्द का प्रयोग हुआ है, श्रीगर्ग

गुणद्वारापि तद्दृश्यते। यथाह गर्गः। "आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः। शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः। वहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते गुणकर्म्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः।"

अनयोरर्थः। अस्य कृष्णत्वेन दृश्यमानस्य प्रतियुगं तनूर्नानावतारान् गृह्णतः प्रकाशयतः शुक्लादयस्त्रयो वर्णा आसन प्रकाशमवापुः। स च स च शुक्लादिरवतार इदानीं साक्षादस्यावतारसमये कृष्णताङ्गतः एतस्मिन्नेवान्तर्भूतः। अतएव कृष्णे कर्त्तृत्वात् सर्व्वोत्कर्षकत्वात् कृष्ण इति मुख्यं नाम। तस्मादस्यैव तानि रूपाणीत्याह वहूनीति। तदेवं गुणद्वारा तन्नाम्नि प्राधान्यसूचकस्य कृष्णस्य तन्नाम्नः प्राधान्ये लब्धे, "कृषिर्भूवाचकः शब्दो नश्च निर्वृति वाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" इति योगवृत्तित्वेऽपि तस्य तादृशत्वं लभ्यते। न चेदं पद्यमन्यपरं। तदुपासना-

---

मुनि ने कहा–यह वालक समय समय अविर्भूत होता रहता है, वर्ण भी उस के अनुसार अनेक होते हैं, शुक्लरक्त पीतवर्ण इन अवतार के समय हो चुके हैं, सम्प्रति कृष्ण वर्ण में आप आविर्भूत हैं, आप के इस पुत्र के गुण एवं कर्म के अनुसार अनेक नाम निकर है, मैं उन सव नामों को जानता हूँ, अपर कोई व्यक्ति नहीं जानते हैं।

श्लोक द्वय का अर्थ इस प्रकार है, यह वालक कृष्णरूप से दृष्ट होता है, प्रत्येक युग में तनु धारण करने से इनके शुक्लादि तीन रूप प्रकाशित हो चुके हैं। सम्प्रति साक्षात् अवतार के समय में पूर्वोक्त उन उन रूपों के अवतारों का समावेश, इन सर्वावतारी मूल भूत में हुआ है, अतः श्रीकृष्ण सव के आदि कर्त्ता होने से सर्वोत्कर्षता निबन्धन उनका मुख्य नाम कृष्ण है, अतएव उनके ही अनेक रूप हैं, उसका ही विवरण वहूनि शब्द से दियागया है, गुणके द्वारा ही भगवन्नामों का प्राधान्य है, उन प्राधान्य सूचक नामों में कृष्ण नाम का प्राधान्य सर्वाधिक उपलब्ध होता है, और यौगिक अर्थ का भी सामञ्जस्य होता है, यौगिक अर्थ इस प्रकार है, कृष्ण में कृष्

तन्त्रगौतमीयतन्त्रे अष्टादशाक्षरव्याख्यायां तदेतत्तुल्यं पद्यं दृश्यते। "कृषशब्दश्च सत्तार्थो णश्चानन्दस्वरूपक: सुखरूपो भवेदात्मा भावानन्दमयत्वत:" इति। तस्मादयमर्थ:—भवन्त्यस्मात् सर्व्वेऽर्था इति भू: धात्वर्थ उच्यते भावशब्दवत्, स चात्र कर्षतेरेवार्थस्तस्यैव प्राप्तत्वात्। गौतमीये, भूशब्दस्य सत्तावाचकत्वेऽपि तद्धात्वर्थसत्तैवोच्यते। घटत्वं सत्तावाचकमित्युक्ते घटसत्तैव गम्यते न तु पटसत्ता न वा सामान्यसत्तेति। अथ निर्वृ तिरानन्दस्तयोरैक्यं सामानाधिकरण्येन व्यक्तं यत् परं ब्रह्म सर्व्वतोऽपि सर्व्वस्यापि बृंहणं वस्तु तत् बृहत्तमं कृष्ण इत्यभिधीयते किन्तु कृषेराकर्षमात्रार्थत्वेन णशब्दस्य च प्रतिपाद्येनानन्देन सह सामानाधिकरण्यासम्भवाद्धेतुहेतुमतोरभेदो

धातु ण प्रत्यय है, कृषि-धातु भूवाचक सत्ता वाचक है, 'ण' निर्वृ ति वाचक है, दोनों के मिलन से ही परम ब्रह्म का वाचक शब्द कृष्ण होता है, इस यौगिक वृत्ति से भी पूर्वोक्त अर्थ का वोध होता है, यह पद्य अन्यार्थ पर है, इस प्रकार कहना ठीक नहीं है, श्रीकृष्णोपासना के प्रमुख ग्रन्थ गौतमीय तन्त्र के अष्टादशाक्षर मन्त्रव्याख्या के अवसर में उस के तुल्य पद्य है, कृष शब्द सत्तार्थक है, 'ण' आनन्द स्वरूप का वोधक है, भावानन्दमयताहेतु सुखरूप आत्म तत्त्व का प्रकाश उस से होता है। तज्जन्य उस का अर्थ इस प्रकार होगा। जिस से समस्त अर्थ होते हैं, उस को भूधात्वर्थ कहते हैं, जैसे भाव शब्द से अर्थ वोध होता है, वह सत्तार्थ कृष् धातु का ही है, कृष् शब्द से ही प्राप्त होता है, गौतमीय में उक्त है, भूशब्द सत्ता वाचक होने पर भी उस धातु की सत्ता का वोध ही होता है, जिस प्रकार 'घटत्वं सत्ता वाचकं' कहने से घट सत्ता का वोध होता है, पट सत्ता अथवा सामान्य सत्ता का बोध नहीं होता है, प्रकृति प्रत्यय मिलित होकर प्रत्ययार्थ प्रकाशित है, इस से निर्वृ ति शब्द का अर्थ आनन्द है, धात्वर्थ प्रत्ययार्थ की एकाधिकरण वृत्ति होने पर जो अर्थ व्यक्त होता है, वह परं ब्रह्म है, सब प्रकार से सब से बृहत् एवं सब को बृहत् कारक वस्तुब्रह्म है,वह बृहत्तम वस्तु ही कृष्ण है,किन्तु कृष धातु का

पचार: कार्य्यः । तच्चाकर्षप्राचुर्य्यार्थमायुर्घृतमितिवत् । ब्रह्मशब्दस्य तत्तदर्थत्वञ्च बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्म परमं विदुरिति विष्णुपुराणात् । अथ कस्मादुच्यते ब्रह्म बृंहति बृंहयतीति श्रुतेश्च ।

एवमेवोक्तं बृहद्गौतमीये । "कृषिशब्दो हि सत्तार्थो णश्चानन्दस्वरूपक: सत्तास्वानन्दयो र्योगात् चित् परं ब्रह्म चोच्यते " इति अद्वयवादिभिरपि सत्तानन्दयोरैक्यं तथा मन्तव्यं । शाब्दिकैर्भिन्नाभिधेयत्वेन प्रतीते: । सत्ताशब्देन चात्र सर्व्वेषां सतां प्रवृत्तिहेतुर्यत् परमं सत्तदेवोच्यते । "सदेव सौम्येदमग्र आसीदि"ति श्रुते: । अभिन्नाभिधेयत्वेऽपि वृक्षस्तरुरितिवद्विशेषणविशेष्यत्वायोगादेकस्य वैयर्थ्याच्च । गौतमीयं पद्यं चैवं व्याख्येयं । पूर्व्वार्द्धे सर्व्वाकर्षणशक्तिविशिष्ट आनन्द: कृष्ण इत्यर्थ: । उत्तरार्द्धे यस्मादेवं सर्व्वाकर्षकसुखरूपोऽसौ तस्मादात्मा जीवश्च तत्र सुखरूपो भवेत् । तत्र हेतु:-

---

अर्थ केवल आकर्षक होने से ण शब्द प्रति पाद्य अर्थ आनन्द के सहित उसका समानाधिकरण होना असम्भव है, अत: हेतु हेतुमानका अभेदोपचार करना आवश्यक है,वह भी आकर्षक प्राचुर्य्यार्थक है, जिस प्रकार आयु जनक घृत को ही "आयु" कहते हैं, ब्रह्म शब्द से उस उस अर्थ का बोध होता है, विष्णु पुराण में उक्त है-जो सब से बृहत् हैं, और सब को बृहत् बना सकते हैं, उनको विज्ञगण परं ब्रह्म शब्द से जानते हैं, श्रुति भी कहती है, कैसे ब्रह्म कहे जाते हैं ? जन हित कर गुण कर्म के द्वारा वह सब से बड़े और जनहितकर निर्दुष्ट गुण कर्म की आदर्श शिक्षा द्वारा सब को बृहत् कर सकते हैं ।।

बृहद् गौतमीय में भी उस प्रकार विवरण है, 'कृषिशब्द-सत्तार्थक है, 'ण' आनन्द स्वरूप है, सत्ता एवं आनन्द के योग को चित् परं ब्रह्म कहते हैं, निर्गुण वादियों के लिए भी सत्तानन्द की एकता उस प्रकार मानना उचित है। शाब्दिक गण, भिन्न प्रवृत्ति निमित्त शब्द की एकत्र वृत्ति को सामानाधिकरण्य कहते हैं। यहाँ सत्ताशब्द से समस्त सत् पदार्थों की प्रवृत्ति हेतु परम सत्ता को ही जानना होगा। श्रुति कहती है, हे सौम्य ! यह विश्व, उत्पत्ति

भावः प्रेमा तन्मयानन्दत्वादिति । तदेवं स्वरूपगुणाभ्यां परमबृहत्तमः सर्व्वाकर्षक आनन्दः कृष्णशब्दवाच्य इति ज्ञेयं । स च शब्दः श्रीदेवकीनन्दन एव रूढ़ः । अस्यैव सर्व्वानन्दकत्वं वासुदेवोपनिषदि दृष्टं । "देवकीनन्दनो निखिलमानन्दयादि"ति । आहुश्च नाम कौमुदीकाराः । कृष्णशब्दस्य तमालश्यामलत्विषि श्रीयशोदास्तनन्धये परब्रह्मणि रूढ़िरिति । ततश्चासौ शब्दो नान्यत्र संक्रमणीयः । यथाह भट्टः "लब्धात्मिका सती रूढ़ि र्भवेद्योगापहारिणी । कल्पनीया तु लभन्ते नात्मानं योगबाधत" इति परब्रह्मत्वञ्च श्रीमद्भागवते "गूढ़ं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गमिति" यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म

के पूर्व सत् में ही था। अभिन्न अभिधेय होने से 'वृक्ष तरु' एकार्थ वाचक शब्द द्वयके समान विशेषण विशेष्य होना सम्भव नहीं होगा। और एक की व्यर्थता होगी।अतःगौतमीय पद्य की व्याख्या इस प्रकार होनी चाहिये, पूर्वार्द्ध में सर्वाकर्षण शक्तिविशिष्ट आनन्द कृष्ण है, उत्तरार्द्ध में,-जब श्रीकृष्ण उस प्रकार सर्वाकर्षक सुख रूप हैं, तब आत्मा जीव भी सुख रूप हैं, उस में हेतु है कि-दोनों का जो सम्बन्ध है, भक्ति भाव, प्रेम, अनन्यममता वह स्वरूप शक्ति भूत ज्ञानानन्द के सार भूत होने से भगवदानन्दमय है, अतएव स्वरूप एवं गुण द्वारा परम बृहत्तम सर्वाकर्षक आनन्द वस्तु ही कृष्ण शब्द का अर्थ है। वह कृष्ण शब्द श्रीदेवकी नन्दन में ही रूढ़ है, वासुदेवोपनिषद् में उनका ही सर्वानन्द रूपमें वर्णन किया गया है, 'देवकीनन्दन सब को आनन्दित करें। नामकौमुदी कार ने भी कहा है, कृष्ण शब्द की मुख्यावृत्ति, तमाल श्यामल कान्ति श्री यशोदा स्तनन्धयपरब्रह्म में है, अर्थात् कृष्ण शब्द श्रवण से तत् काल यशोदानन्दन का ही बोध होता है, अतएव कृष्ण शब्द से अपर अर्थ समझना नहीं चाहिये। श्रीकुमारिल भट्टपाद ने कहा है, यथार्थ स्वरूप बोधक होने से मुख्या वृत्ति, रूढ़ि, यौगिक अर्थ का बाधक होती है, मुख्यार्थ प्राप्त होने से उस समय यौगिकार्थानुसन्धान का अवसर नहीं होता है, परब्रह्मत्व का विवरण श्रीमद् भागवत में है, कृष्ण, गूढ़ परम ब्रह्म मनुष्यलिङ्ग

सनातनं इति च। श्रीविष्णुपुराणे "यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परं ब्रह्म नराकृतीति।" श्रीगीतासु च "ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहमिति। श्री गोपालतापनीषु च। "योऽसौ परं ब्रह्म गोपाल" इति॥

अथ मूलमनुसरामः। यस्मादेव तादृक् कृष्णशब्दवाच्यस्तस्मादीश्वरः सर्व्ववशयिता। तदिदमुपलक्षितं वृहद्गौतमीये कृष्णशब्दस्यैवार्थान्तरेण। "अथवा कर्षयेत् सर्व्वं जगत् स्थावरजङ्गमं। कालरूपेण भगवान् तेनायं कृष्ण उच्यते" इति। कलयति नियमयति सर्व्वमिति कालशब्दार्थः। तथाच तृतीये तमुद्दिश्योद्धवस्य पूर्ण एव निर्णयः। "स्वयन्त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्त कामः वलिं हरद्भिश्चिर-लोकपालैः किरीटकोटीड़ितपादपीठ" इति। श्रीगीतासु " विष्टभ्याऽमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगदिति"। श्री गोपालतापन्यां। "एकोवशी सर्व्वगः कृष्ण ईड्य" इति। यस्मादेव

है, जिन व्रज वासियों के मित्र परमानन्द पूर्ण ब्रह्म सनातन हैं, श्री विष्णु पुराण में भी लिखित है, जहाँपर श्रीकृष्ण नामक नराकृति परब्रह्म अवतीर्ण हैं, श्रीगीता में भी उक्त है, ब्रह्म की भी में प्रतिष्ठा हूँ। श्रीगोपाल तापनी में उक्त है, वह गोपाल परम ब्रह्म हैं।

अनन्तर मूल श्लोक की व्याख्या करता हूँ। जव कृष्ण शब्द का वाच्य ही यशोदानन्दन है, अतः आप ईश्वर हैं, सर्ववशयिता हैं, गौतमीय तन्त्र में कृष्ण शब्द का अर्थ किया गया है, अथवा समस्त स्थावर जङ्गम का जो आकर्षण, भगवान् काल रूप से करते हैं, तज्जन्य उन्हें कृष्ण कहते हैं, सव को कलयति नियमयति जो नियमन काल रूप से करते हैं, काल शब्द का वह अर्थ है। भागवत के तृतीय स्कन्ध में श्रीउद्धव ने श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके पूर्ण निर्णय किया है। श्रीकृष्ण, स्वयं असम–अनधिक हैं, अर्थात् उनका समान एवं अधिक कोई नहीं हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश का अधीश्वर हैं, निज स्वरूप शक्ति में महीयान् होकर रहते हैं, लोकपालगण निरन्तर नम्रता से उपहार अर्पण करते रहते हैं, और निज मस्तक स्थित किरीट के अग्रभाग द्वारा निरन्तर पाद पीठ का स्पर्श करते हैं, अर्थात्

तादृगीश्वर:, तस्मात् परम:। सर्वोत्कृष्टा मा लक्ष्मी रूपा: शक्तयो यस्मिन्। तदुक्तं श्रीभागवते-रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतः "इति, "नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त रते: प्रसाद" इत्यादि। तत्रातिशुशुभे ताभि र्भगवान् देवकीसुत: " इति। "ताभि र्विधूत शोकाभि र्भगवान च्युतो वृत:। व्यरोचताधिकमिति च। अत्रैवाग्रे वक्ष्यते। श्रिय: कान्ता: कान्त परमपुरुष:" इति। तापन्याञ्च। कृष्णो वै परमं दैवतम्" इति। यस्मादेव तादृक् परमस्तस्मादादिश्च। तदुक्तं श्री दशमे, श्रुत्वाजितं जरासन्धं नृपते र्ध्यायतो हरि:। आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह इति। टीका च स्वामिपादानाम्-आद्यो हरि: श्रीकृष्ण इत्येषा, एकादशे तु तस्य श्रेष्ठत्वमाद्यत्वञ्च युगपदाह। पुरुष मृषभमाद्यं कृष्ण संज्ञं नतोऽस्मि इति। न चैतदादित्वं तदवतारापेक्षं

चरणारविन्दों में साष्टाङ्ग प्रणति निरन्तर करते रहते हैं, श्रीगीता में उक्त है, मैं एक अंश के द्वारा विश्व को अधिकार कर रहता हूँ। श्रीगोपाल तापनी में उक्त है,-कृष्ण, अद्वितीय, व्यापक, नियन्ता एवं प्रणम्य हैं। जब श्रीकृष्ण उस प्रकार ईश्वर हैं, अत: आप ही परम हैं, परा-सर्वोत्कृष्टा, मा-लक्ष्मीरूपा शक्ति समूह जिन में हैं, श्रीमद् भागवत में कथित है, निज काम संप्लुत, आत्माराम, कृष्ण, निज शक्ति स्वरूप लक्ष्मी वर्गके साथ क्रीड़ा करते हैं, हे अङ्ग ! लक्ष्मीगण भी उस प्रकार प्रसाद प्राप्त करने में असमर्थ रहीं, भगवान् देवकीसुत गोपीपरिषद् में अति सुशोभित हुये थे। शोकविमुक्त गोपाङ्गनाओं के द्वारा भगवान् अच्युत परिवृत होकर अधिक शोभित हुए थे। आगे और भी कहेंगे, श्रिय लक्ष्मीगण कान्ता हैं, और परम पुरुष ही कान्त हैं। तापनी में भी उक्त है, कृष्ण ही परम दैवत हैं, जब श्रीकृष्ण परम हैं, अत: आप आदि भी हैं। श्रीदशम में कहा भी है, जरासन्ध अपराजित है, यह जानकर राजा चिन्तित थे, उद्धव ने जो उपाय कहा था, उस समय आद्यहरि श्रीकृष्ण ने चिन्ता दूर करने के लिए उसे कहा। इस श्लोक की टीका में स्वामिपादने कहा है, आद्यो हरिः श्रीकृष्णः। एकादश में श्रीकृष्ण के आद्यत्व श्रेष्ठत्व को युगपद्

किन्तु अनादि–न विद्यते आदिर्यस्य तादृशः। तापन्याञ्च, "एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य इत्युक्त्वाह, नित्यो नित्यानामिति" च यस्मा देव तादृशतया आदि स्तस्मात् सर्वकारण कारणं, तथाच दशमे तं प्रति देवकीवाक्यम्। यस्यांशांशांश भागेन विश्वस्थित्यप्ययोद्भवाः भवन्ति किल विश्वात्मन् स्तं त्वाद्याहं गतिं गता' इति टीका च यस्यांशः पुरुषः, तस्यांशो'माया तस्यांशा गुणाः, तेषां भागेन परमाणु मात्रलेशेन विश्वोत्पत्यादयो भवन्ति। तं त्वा त्वां गतिं शरणं गतास्मीत्येषा, तथाच ब्रह्म स्तुतौ " नारायणोऽङ्गं नरभूजला–यनादिति "। नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीतिविदुर्बुधाः। तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः " इत्यनेन लक्षितो यो नारायणः स तवाङ्गं त्वं पुनरङ्गीत्यर्थः " श्रीगीतासु विष्टभ्याहमिदं कृत्स्न मेकांशेन स्थितो जगदिति। तदेवं कृष्ण शब्दस्य यौगिकार्थोऽपि साधितः॥

कहा है, पुरुषं ऋषभं आद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि। यह आदित्व, अन्य अवतार की अपेक्षा से नहीं है, किन्तु आप अनादि हैं, अर्थात् आप से आदि कोई भी नहीं है। तापनी में एक वशी सर्वग कृष्ण इड्य कहकर नित्यो नित्यानां नित्य का भी नित्य हैं, अतएव आप सर्व कारणों के कारण हैं। सब के कारण–कारणार्णवशायी महत् स्रष्टा पुरुष हैं, उनका भी कारण श्रीकृष्ण हैं। श्रीदशम में श्रीकृष्ण के प्रति श्री देवकी का कथन इस प्रकार है। जिनके अंश अंश के अंश भाग से विश्व की स्थिति उत्पत्ति आदि होती हैं, हे विश्वात्मन् मैं आप की शरण ले रही हूँ। इसकी टीका इस प्रकार है,–जिन के अंश–पुरुष है, उनकी अंश माया है, उनके अंश गुण समूह है, उस के अंश मात्रा से–परमाणु लेश मात्र से विश्व की उत्पत्ति प्रभृति होती है, इस प्रकार आप हैं, आप की में शरण ले रही हूँ। ब्रह्मस्तुति इस प्रकार है। समस्त तत्त्वों का आश्रय जो नारायण हैं, वह भी आप का अङ्ग, अंश हैं। नरसे जो उत्पन्न है, उसे नार कहते हैं, उस के अयन–आश्रय को नारायण कहते हैं। इस से प्राप्त जो नारायण है,

ये च तच्छब्देन कृपिणाभ्यां परमानन्दमात्रं वाचयन्ति ते ऽपि ईश्वरादि विशेषणं स्तत्र स्वाभाविकी शक्ति मन्येरन्। तस्मिन्न द्वितीयत्वेन सर्वकारणत्वेन च वस्त्वन्तर शक्त्यारोपायोगात्। तथाच श्रुतिः, " आनन्दो ब्रह्मेति, को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। आनन्दाद्धोमानिभूतानि जायन्ते। न तस्य कार्य्यं करणञ्च विद्यते, न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्ति र्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च इति। ननु स्वमते योगवृत्तौ च सर्वाकर्षक परम वृहत्तमानन्दः कृष्ण इत्यभि-धानात् अविग्रह एव स इत्यवगम्यते, आनन्दस्य विग्रहानवगमात्। सत्यम्। किन्त्वयं परमोऽपूर्वः पूर्वसिद्धानन्दविग्रहः' इति। सच्चिदानन्दलक्षणो यो विग्रह स्तद्रूप एवेत्यर्थः। तथाच श्रीदशमे ब्रह्मणस्तवे-त्वय्येव नित्य सुखबोधतनाविति " तापनी हयशीर्षयो

वह आपका अङ्ग है, आप अङ्गी हैं। श्रीगीता में कथित है, एक अंश से मैं समग्र जगत् को अधिकार कर स्थित हूँ। इस प्रकार कृष्ण शब्द के प्रकृति प्रत्यय से प्राप्त यौगिक अर्थ को दर्शायागया है।

जो लोक निर्गुण निष्क्रिय परतत्त्व में विश्वास रखते हैं, उन मत में कृष्ण शब्द एवं कृष् ण' प्रकृति प्रत्यय से आनन्द स्वरूप का ही बोध होता है, किन्तु कृष्ण शब्द के विशेषण ईश्वरादि हैं, उस को सार्थक करने के लिए कृष्ण में स्वाभाविकी शक्ति मानना पड़ेगा। परतत्त्व अद्वय हैं, और सर्वकारण हैं.अत अपर किसी वस्तु की शक्ति का आरोप कृष्णस्थ परतत्त्व में हो नहीं सकता है। श्रुति कहती हैं, आनन्द ब्रह्म है, ऐसा नहीं हो तो कोन व्यक्ति आनन्दित होगा और जीवित रहेगा। आनन्द से परिदृश्यमान भूत मात्र की उत्पत्ति होती है, उनका कार्य एवं करण भी नहीं है, उनका समान एवं अधिक कोई भी वस्तु नहीं है, उनकी निजी शक्ति अनेक हैं, उनमें प्रधान रूप से स्वाभाविकी ज्ञानवल क्रिया को कहते हैं।

निजमत में योगवृत्ति से सर्वाकर्षक परमवृहत्तमानन्द-कृष्णहैं, ऐसा होने पर आप अविग्रह ही होंगे। कारण आनन्द का विग्रह

रपि, सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्ट कारिणे' इति । ब्रह्माण्डे च श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रे, नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्द विग्रहः'' इति । एतदुक्तं भवति । सत्त्वं खल्वव्यभिचारित्वमुच्यते तद्रूपत्वञ्च तस्य श्रीदशमे ब्रह्मादि वाक्ये, सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्य मित्यत्र व्यक्तम् । तथोद्यमपर्वणि च,-सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णः सत्यमत्र प्रतिष्ठितम् । सत्यात् सत्यश्च गोविन्द स्तस्मात् सत्यो हि नामतः'' इति । श्रीदेवकी वाक्ये च, "नष्टेलोके द्विपरार्द्धावसाने महाभूतेष्वादि भूतं गतेषु । व्यक्तेऽव्यक्तं काल वेगेन याते, भवानेकः शिष्यते शेष सज्ञः । मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्, लोकान्, सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् । तत् पादाब्ज प्राप्य यदृच्छयाद्य, स्वस्थः शेते मृत्यु-रस्मादपैति'' इत्यादि । एकोऽसि प्रथममित्यादि । श्रीब्रह्मणो वाक्ये "तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते'' इति । श्रीगीतासु, ब्रह्मणो हि

नहीं होता है, कहना ठीक है। किन्तु कृष्ण, परम अपूर्व, पूर्वसिद्ध आनन्द विग्रह है। सच्चिदानन्द स्वरूप जो विग्रह वह ही कृष्ण है। श्रीदशम स्कन्ध के ब्रह्म स्तव में उक्त है, नित्य सुख वोधतनु रूप आप में। तापनी हयशीर्ष ग्रन्थ में भी उक्त है-सच्चिदानन्दरूप अक्लिष्ट कारी कृष्ण को। ब्रह्माण्ड पुराणमें श्रीकृष्ण के अष्टोत्तरशतनामस्त्रोत्र है, उस में उक्त है, नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्द विग्रहः। इस प्रकार कहा जाता है—,सत्त्व अव्यभिचारित्व ही है, अर्थात् स्वरूप भूत है। श्रीदशम के ब्रह्मादि वाक्य में उस प्रकार वर्णन ही है, सत्यव्रतं, सत्यपरं त्रिसत्यं'' इस में परिस्फुट हुआ है। उद्यम पर्व में उक्त है, कृष्ण सत्य में प्रतिष्ठित है, कृष्ण में ही सत्य प्रतिष्ठित है, सत्य से भी सत्य गोविन्द हैं, अतः नाम से भी आप सत्य हैं। श्रीदेवकी देवी के वाक्य में उक्त है--द्विपरार्द्ध काल में समस्त लोक नष्ट होने पर, आदि भूत में महाभूतों का व्यक्तों का अव्यक्त में काल वेग से विलय होने पर शेषसंज्ञ आप ही रह जाते हैं, मरणधर्माजन गण मृत्युभय से भीत होकर पलायन करते रहते हैं, कहीं पर निर्भय स्थान नहीं मिलता, आप की कृपा से आप के चरणार विन्दों को

प्रतिष्ठाहमिति । यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदेच प्रथित पुरुषोत्तमः" इति । तापन्याम् । जन्म जराभ्यांभिन्नः, स्नानुरयमच्छेद्योऽयं, योऽसौ सौर्य्ये तिष्ठति, योऽसौ गोषु तिष्ठति, योऽसौ गाः पालयति, योऽसौ गोपेषु तिष्ठतीत्यादि । गोविन्दान् मृत्युर्विभेति" इत्यादि च । तत्र पूर्वत्र सौर्य्यं इति । सौरी यमुना, तददूरदेशे वृन्दावने, इत्यर्थः । अथ चिद्रूपत्वं स्व प्रकाशत्वेन पर प्रकाशकत्वम् । तच्चोक्त श्रीदशमे ब्रह्मणा, एकस्त्व मात्मे त्यादौ स्वयं ज्योतिरिति । तापन्याम्-यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो विद्यास्तस्मै गापयति स्म कृष्णः, तं ह देवमात्मवृत्तिप्रकाशं मुमुक्ष र्वै शरणं ब्रजेदिति" न चक्षुषा पश्यति रूपमस्य, यमेवैष वृणुते तेनलभ्य स्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वामिति" श्रुत्यन्तरवत् । यथानन्दरूपत्वं सर्वांशेन निरुपाधिपरमप्रेमास्पदत्वं ॥ तच्च श्रीदशमे ब्रह्मस्तवान्ते-ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्ण इत्यादि प्रश्नोत्तरयो र्व्यक्तम् ।

प्राप्त कर निर्भय से अवस्थान करते हैं, मृत्यु भी भगजाती है । प्रथम एक ही थे, श्रीब्रह्मा के वाक्य में भी ब्रह्माद्वय रूप में रहते हैं । श्रीगीता में ब्रह्म की मैं प्रतिष्ठा हूँ, समस्त भूतों से अतीत हूँ । नित्य पदार्थों से भी उत्तम हूँ, अतः लोक में वेद में पुरुषोत्तम नाम से ख्यात हूँ । तापनी में उक्त है, जन्म जरा से भिन्न, यह निश्चल है, अच्छेद्य है, जो सौर्य्य में अवस्थित हैं,गौओं में रहते हैं, जो गो पालन करते हैं, जो गोपों में रहते हैं । गोविन्द से मृत्यु भी भीत हैं । सौर्य्य शब्द का अर्थ इस प्रकार है --सौरी – सूर्य पुत्री यमुना, उसके समीप वर्त्ती स्थान वृन्दाबन में रहते हैं, जो स्व प्रकाश होकर पर प्रकाशक है,वह चिद्रूप है ब्रह्मा जीने श्रीदशम में कहा है, आप एक ही आत्मा ही स्वयं ज्योति हो । एवं विद्यादान किया है, वह कृष्ण है, वह देव है, आत्मवृत्ति प्रकाशक है, मुमुक्षु व्यक्ति को उनकी शरण में आना कर्त्तव्य है । नयनों से उनके रूप का दर्शन नहीं होता, कृष्ण जिसको अङ्गीकार करते हैं, वह उनको जान सकता है । श्रीकृष्ण सर्वांश में निरुपाधि परम प्रेमास्पद हैं, वह ही उनका आनन्द रूपत्व

तथाचानुभूतमानकदुन्दुभिना, विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः, केवलानुभवानन्द-स्वरूपः सर्वबुद्धिदृगिति। आनन्दं ब्रह्मणोरूपम्" इति श्रुत्यन्तरवत्॥

तदेवं तस्य सच्चिदानन्दविग्रहरूपत्वे सिद्धे, विग्रह एवात्मा तथात्मैव विग्रह इति सिद्धम्। ततो जीववद्देहित्वं तस्य नेत्यपि सिद्धान्तितम्। यथोक्तं श्रीशुकेन। कृष्णमेनमवेहित्वमात्मान मखिलात्मनां। जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभातिमायया" इति। तथापि तस्य देहिवल्लीलाकृपापरवशतयैवेत्यर्थः। माया दम्भे कृपायाञ्चेति" विश्व प्रकाशः। तदेवमस्य तथा तथालक्षण श्रीकृष्ण रूपत्वे सिद्धे चोभय लीलाभिनिविष्टत्वेन क्वचिद्वृष्णीन्द्रत्वं क्वचिद्-गोविन्दत्वञ्च दृश्यते। तथाह द्वादशे श्रीसूतः,— श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्णृषभावनीध्रुग्राजन्यवंश दहनानपवर्गवीर्य्य। गोविन्द गोप-

---

है। श्रीदशम में ब्रह्मस्तव के अन्त में वर्णित है, हे ब्रह्मन्! परोद्भव कृष्ण में सब व्रज वासियों की उस प्रकार प्रीति कैसे सम्भव हो? इस प्रकार प्रश्नोत्तर में सुस्पष्ट हुआ है। आनकदुन्दुभि ने भी अनुभव किया, आप विदित हैं, आप साक्षात् प्रकृत्यतीत पुरुष हैं, केवलानु भवानन्द स्वरूप-आप हैं। सर्वबुद्धिदृक् आप हैं। ब्रह्म का आनन्द रूप, श्रुत्यन्तर में कथित है॥

श्रीकृष्ण का विग्रह, सच्चिदानन्द विग्रह रूप होने पर विग्रह ही उनकी आत्मा, तथा आत्मा ही विग्रह है; अतएव जीव के समान देह देही भाव उनमें नहीं है। श्रीशुकने भी कहाहै, अखिल आत्माओं की आत्मा कृष्ण को ही तुम जानना, जगत् वासियों के मङ्गल विधान के लिए सत् शिक्षा प्रदान हेतु कृपापूर्वक देही की भाँति दिखाई देते हैं। तथापि उनकी देहिवल्लीला, करुणापरवशता से ही है। माया-शब्द का अर्थ-दम्भ, कृपा, विश्वप्रकाश में है, इस से श्रीकृष्ण का स्वरूप पूर्वोक्त रूप होने से गोप लीला क्षत्रिय लीलारूप उभय लीला निविष्ट होने पर कभी वृष्णीन्द्रत्व कभी गोविन्दत्व दिखाई देते हैं। द्वादश स्कन्ध में श्रीसूत ने भी कहा है, श्रीकृष्ण!

वनिता व्रजभृत्यगीततीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलपाहि भृत्यान्'' इति। तदेवमपि स्वाभीष्ट रूपलीलापरिकरविशिष्टतया गोविन्दत्वमेव स्वाराध्यत्वेन योजयति गोविन्दइति, यथा अत्रैवाग्रे स्तोष्यते-चिन्तामणि प्रकर सद्मसुकल्पवृक्ष, इत्यादि। श्रीदशमे श्रीगोविन्दाभिषेकारम्भे सुरभीवाक्यम्–त्वं न इन्द्रोजगत्पते'' इति। अभिषेकान्ते ''गोविन्द' इति चाभ्यधादित्युक्त्वा तत् प्रकरणारम्भे श्रीशुकप्रार्थना, प्रीयान्न इन्द्रोगवामिति'' गवां सर्वाश्रयत्वाद् गवेन्दत्वेनैव सर्वेन्द्रत्व सिद्धेः। न चेदं न्यूनं मन्तव्यम्। तथाहि गोसूक्तम्। गोभ्यो यज्ञाः प्रवर्त्तन्ते गोभ्यो देवाः समुत्थिताः गोभिर्वेदाः समुद्गीर्णाः षड़ङ्गपदक्रमा'' इति। अस्तु तावत् परम गोलोकावतीर्णानां तासां गवामिन्द्रत्वमिति तापनीषु च ब्रह्मणा तदीयमेव स्वेनाराधनं प्रकाशितम्

कृष्ण सख ! ऋषभ ! जगद् वासियों के द्रोही राजन्य वंशदहनान पवर्गवीर्य्य ! गोविन्द ! गोपवनिता व्रजभृत्यगीत तीर्थश्रवः श्रवण मङ्गल ! भृत्यवर्ग की रक्षा आप करो। ऐसा होने पर भी निज अभीष्ट रूप लीला परिकर विशिष्ट श्रीगोविन्द को ही आराध्यरूप में वर्णन करते हैं, गोविन्द इति। इस ग्रन्थ के अग्रिम भाग में भी स्तव कर कहेंगे, चिन्तामणि प्रकरसद्म समूह में कल्पवृक्ष मय कानन में लीलारत हैं, श्रीदशम में—श्रीगोविन्द के अभिषेक के आरम्भ में सुरभी वाक्य इस प्रकार हैं, हे जगत्पते, तुम ही हमारे इन्द्र हो। अभिषेक के अनन्तर '' गोविन्द'' शब्द का ही प्रयोग किया। उक्त प्रकरण के आरम्भ में श्रीशुक की प्रार्थना यह है, गो समूह के इन्द्र, हमारे प्रति प्रसन्न होवे। निखिल पदार्थों का आश्रय गो ही है, अतः गवेन्द्र होने से सर्वेन्द्रत्व स्वाभाविक रूप से ही हुआ। यह तो अमहत्त्व की वात ही है ? इस प्रकार मानना ठीक नहीं है, गोसूक्त इस प्रकार है, यज्ञ समूह का प्रवर्त्तन गो से हुआ है, देवताओं की उत्पत्ति गो से ही हुई है, षड़ङ्गपदकक्रमा वेदगण गो के द्वारा ही प्रकाशित हुई हैं। और यह तो परम गोलोक से अवतीर्ण गो समूह हैं। उन सव के इन्द्र हैं। तापनी में भो ब्रह्माने उनको ही निज

"गोविन्दं सच्चिदानन्द विग्रहं वृन्दावनसुरभूरुहतलासीनं सततं समरुद्गणोऽहं तोषयामीति" तथैव दशमे, "तद्भूरिभाग्यमिहजन्म किमप्यटव्यां यद् गोकुल'' इत्यादि श्रीनन्दनन्दनत्वेनैव च तं लब्धुं प्रार्थना। नौमिड्यतेऽभ्रवपुषे तड़िदम्बराय" इत्यादि। पशुपाङ्ग-जायेति। तदेवं गोविन्दशब्दस्य नाना पारमैश्वर्य्यमय्यन्यार्थतापि तेन नाभिमता। तथा चोक्तं, ईश्वरत्वे परमेश्वरत्वानुवाद पूर्वक तात्पर्य्यावसानतया गौतमीयतन्त्रे श्रीमद् दशाक्षरमन्त्रार्थकथने-गोपीति प्रकृतिं विद्याज्जन स्तत्त्वसमूहकः अनयोराश्रय व्याप्त्या कारणत्वेन चेश्वरः। सान्द्रानन्दं परं ज्योति र्वल्लभत्वेन च कथ्यते। अथवा गोपी प्रकृति र्जन स्तदंशमण्डलं। अनयोर्वल्लभः प्रोक्तः स्वामी कृष्णाख्य ईश्वरः। कार्य्यकारणयोरीशः श्रुतिभि स्तेन गीयते। अनेक जन्मसिद्धानां गोपीनां पतिरेव वा। नन्दनन्दन इत्युक्त स्त्रैलोक्यानन्द वर्द्धनः" इति॥

आराधनीय रूप में प्रकाश किया है। सच्चिदानन्द विग्रह, वृन्दावन सुरभूरुह तलासीन गोविन्द की आराधना मरुद् गण के साथ मैं करता हूँ। उस प्रकार श्रीदशम में भी कहा है मैं अपना भूरि भाग्य मानूँगा यदि गोकुल की अटवी में मेरा नगण्यजन्मलाभ हो। वहाँ श्रीनन्दनन्दन रूप में श्रीकृष्ण को प्राप्त करने की उनकी प्रार्थना रही। अभ्रवपु, विद्युत् अम्वर, पशुपाङ्गज हे स्तुत्य आप को नमस्कार। अतः गोविन्द शब्द से पारमैश्वर्य्यमय अनेक अर्थ को भी आपने ध्येय नहीं वनाया है। पूर्वोक्त ईश्वरत्व के विषय में परमेश्वरत्व का अनुवाद पूर्वक तात्पर्य्य में पर्य्यवसान करने के लिए गौतमीयतन्त्र की अष्टादशाक्षर मन्त्रव्याख्या प्रसङ्ग में कहा है, गोपी शब्द का अर्थ प्रकृति है, जन शब्द का अर्थ तत्त्व समूह उभय का आश्रय, जो व्यापन स्वभाव एवं कारण रूप में ईश्वर होते हैं, वल्लभ शब्द से सान्द्रानन्द परं ज्योतिः का वोध होता है। अथवा गोपी प्रकृति, जन तदंशमण्डल है, उभय का वल्लभ-स्वामी, कृष्ण नामक ईश्वर हैं। कार्य कारण के ईश रूप में श्रुतिगण वर्णन

प्रकृतिमिति, मायाख्यां जगत्कारणशक्तिमित्यर्थः तत्त्व समूहको महदादिरूपः। अनयोराश्रयः सान्द्रानन्दं परं ज्योतिरीश्वरो वल्लभशब्देन कथ्यते। ईश्वरत्वे हेतु व्याप्तया कारणत्वेन चेति। प्रकृतिरिति स्वरूपभूता मायातीता वैकुण्ठादौ प्रकाशमाना महालक्ष्म्याख्या शक्तिरित्यर्थः' अंशमण्डलं सङ्कर्षणादिरूपम्। अनेक जन्म सिद्धानामित्यत्र। बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तवचार्जुनेति श्रीभागवद् गीतावचनामनादिजन्मपरम्परायामेव तात्पर्य्यम्। तदेवमत्रापि नन्दनन्दनत्वमेवाभिमतं श्रीगर्गेण च यथोक्तम्। "प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मज" इति। आत्मजत्वंहि, तस्य श्रीवसुदेवस्यापि मनस्याविर्भूतत्वमेवाभिमतं। आविवेशांशभागेन मन आनक दुन्दुभेरिति। श्रीदेवक्यामपि दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा

करते हैं। अनेक जन्म सिद्ध गोपीयों के पति ही हैं, नन्दनन्दन रूप में ख्यात हैं, आप त्रैलोक्यानन्दवर्द्धन कारी हैं।

माया नामक जगत् कारण शक्ति को प्रकृति कहते हैं। महदादि को तत्त्व समूह कहते हैं, दोनों का आश्रय,—सान्द्रानन्द परं ज्योतिः ईश्वर को बल्लभ शब्द से कहते हैं। व्यापक एवं कारण होने से ही आप ईश्वर हैं। प्रकृति शब्द से स्वरूपभूता मायातीता वैकुण्ठादि में प्रकाशमाना महालक्ष्मी नामक शक्ति हैं। सङ्कर्षण को अंशमण्डल कहते हैं। अनेक जन्मसिद्धों का पति है, इस का विवरण, भगवत् गीता में उक्तहै, तुम्हारे और मेरे अनेक जन्म अतीत हो चुके हैं, इस कथन का अभिप्राय अनादि जन्मपरम्परा प्रदर्शन के लिए ही है। अत यहाँपर भी नन्दनन्दन ही अभिमत है, श्रीगर्ग ने भी वैसा ही कहा है, तुम्हारे यह पुत्र पहले कभी वसुदेव का भी पुत्र हुआ था। आत्मज होना तो वसुदेव के मन में आविर्भूत होने से ही सम्भव हुआ। आनक दुन्दुभि के मन में आविर्भूत हुए, ऐसा कथन है। श्रीदेवकी में भी आविर्भूत हुए, पूर्वदिक् जिस प्रकार चन्द्रमा को धारण करती है, उस प्रकार देवकी ने भी विश्वात्मा को धारण किया। श्रीव्रजेश्वरदम्पती में भी वैसा ही हुआ, फल को

यथानन्द करं मनस्त इत्यादे:। श्रीव्रजेश्वरयोऽपि तथासीदेव, फलेन फलकारणमनुमीयते, श्रीभगवत् प्रादुर्भावस्य पूर्वाव्यवहितकालं व्याप्य तथा तथा सर्वत्र दर्शनात्। किन्त्वात्मनि तस्याविर्भावे सत्यप्यात्म-जत्वाय पितृभावमय शुद्धमहाप्रेमैव प्रयोजकम्। ब्रह्मण: सकाशाद्वराह देवस्याविर्भावेऽपि परस्परं तथा भावदर्शनाभावात्। तथा नृसिंह देव स्तम्भयोरपि, न च वक्तव्यमुदर प्रवेशे सति पुत्रत्वं स्यात्। परीक्षिद्र-क्षणार्थं तन्मातुरुदरप्रविष्ठे च तयोस्तादृशव्यवहाराभावात्। तस्मात् वात्सल्याभिधप्रेमैव पुत्रत्वे कारणम्। तादृशशुद्धप्रेमा तु श्रीव्रजेश्वरयोरेव श्रीवसुदेवदेवक्योस्तु परमैश्वर्य्यज्ञानं प्रतिबन्धकं, इति साधूक्तं प्रागयं वसुदेवस्येति। अथ श्रीशुकदेवेन तथैव निर्णीतं नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुत:" इति—आगमविद्भिरपि

देखकर ही कारण का अनुमान लगाया जाता है। श्रीभगवत आविर्भाव के कुछ काल पहले से ही उक्तलक्षण सर्वत्र देखने में आया किन्तु मन में आविर्भूत होनेपर भी आत्मज के लिए शुद्ध पितृभाव-मय शुद्धमहाप्रेम ही कारण है। ब्रह्मा के समीप से वराहदेव प्रकट होने से भी परस्पर पितापुत्र सम्बन्ध नहीं हुआ। उस प्रकार श्रीनृसिंह देव के साथ स्तम्भ का जन्य जनक भाव नहीं हुआ। उदर में प्रविष्ट होने से पुत्र होता है, ऐसा भी कहा नहीं जा सकता है, परीक्षित की रक्षा के लिए कृष्ण उत्तरा के उदर में प्रविष्ट हुये थे, किन्तु उत्तरा के साथ माता पुत्र सम्बन्ध कृष्ण का नहीं हुआ। अतएव पुत्रत्व के प्रति वात्सल्य प्रेम ही कारण है। उस प्रकार शुद्ध प्रेम तो श्रीव्रजेश्वर दम्पती में ही था। श्रीवसुदेव देवकीमें तो पारमैश्वर्य्य ज्ञान प्रतिबन्धक था। अतएव उत्तम ही कहा–पूर्वकाल में यह पुत्र वसुदेवके यहाँ भी हुआ था। श्री शुक देवने निर्णय भी किया है, यह गोपिकासुत भगवान् कृष्ण, देहियों का उस प्रकार सुखकर नहीं है। आगमज्ञा व्यक्तिगणने भी कहा है, सकललोकमङ्गलनन्दगोपतनयदेवता। अतएव श्रीमद् दशाक्षर विनियोग में भी नन्दनन्दनमय ही वर्णन है। इस विषय

सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत् पदम् ।
तत् कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांश सम्भवम् ॥२

"सकललोकमङ्गलोनन्दगोपतनयोदेवता" इति । अतः श्रीमद्दशाक्षर विनियोगेऽपि तन्मयएव दृश्यते, इति । अथ विशेषः श्रीवैष्णव तोषण्यां नन्दस्त्वात्मज उत्पन्न" इत्यादौ द्रष्टव्यः ॥१॥

अथ तस्य तद्रूपतासाधकं नित्यं धाम प्रतिपादयति-सहस्रपत्रं कमलं, तत् कर्णिकारं, महत् पदम्, तदनन्तांश सम्भवम् गोकुलाख्यं तद्धाम अस्ति ॥२॥

अथ तस्य तद्रूपता साधकं नित्यं धाम प्रतिपादयति, सहस्र-पत्रं कमलमित्यादिना । सहस्राणि पत्राणि यत्र तत् कमलं,

---

में विशेष द्रष्टव्य हो तो श्रीवैष्णवतोषणी के नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने" प्रकरण को देखें ॥

सारार्थ—इस श्लोक में कृष्णपद ही विशेष्य है, अपरपदसमूह उस के विशेषण हैं। रूप गुण माधुर्य्यादि द्वारा सर्वाकर्षक आनन्द मयमूर्त्ति ही श्रीकृष्ण हैं, वह ही परमतत्त्व स्वयं भगवान् श्रीब्रजेन्द्र-नन्दन हैं, श्रीमद् भागवतादि आर्षशास्त्रप्रमाण द्वारा श्रीजीवगोस्वामी पाद ने निजकृत टीका में उस का निर्द्धारण किये हैं। वह सर्वशक्ति मान् परम ईश्वर हैं, उनका श्रीविग्रह, अप्राकृत हैं, नित्यचैतन्य आनन्द स्वरूप हैं, जीवादि के समान मायिक मूर्त्ति नहीं है। आप अनादि काल से ही निज नित्यलीलास्थल श्रीवृन्दावनादि में विरा-जित हैं। गोचारण लीला कौतुकी होने के कारण आप का नाम गोविन्द है। शास्त्र में अनन्त ब्रह्माण्ड के मूल कारण अनेक रूपों में निर्णीत होने पर भी निखिल शास्त्र समन्वय विचार से श्रीकृष्ण ही सर्व कारण के मूल कारण रूप में निर्णीत हुये हैं ॥१॥

अनन्तर उन के नित्य धाम का प्रति पादन करते हैं। सहस्र दल विशिष्ट कमलाकृति चिन्तामणिमय श्रीगोकुलाख्य नित्यधाम है, कर्णिकार के मध्य में। योगपीठ में उनकी नित्य स्थिति है। धामादि

भूमिश्चिन्तामणिगणमयीति वक्ष्यमाणानुसारेण चिन्तामणिमयं पद्मं तद्रूपं महत् सर्वोत्कृष्टं पदंस्थानं। महतः श्रीकृष्णस्य महा भगवतो वा पदं महावैकुण्ठादिरूपामित्यर्थः, तत्तुनाना प्रकारं श्रूयते इत्या–शङ्कया प्रकार विशेषत्वेन निश्चिनोति, गोकुल मित्याख्या रूढ़ि र्यस्य तत् गो गोपावासरूप मित्यर्थः। रूढ़ि र्योगमपहस्तीति न्यायेन तस्यैव प्रतीतेः। एतदभिप्रेत्योक्तं श्रीदशमे, "भगवान् गोकुलेश्वर" इति। शीलार्थे त्वत्र वरच् प्रत्ययः। अतएव तदनुकूलत्वेनोतर ग्रन्थोऽपि व्याख्येयः। तदेव चाम्नातं गोकुलं वनवैकुण्ठमिति। तस्य श्रीकृष्णस्य धाम श्रीनन्द यशोदादिभिः सह वासयोग्यं महान्तः पुरं तैः सहवासितात्वग्रे समुद्देक्ष्यते। तस्य स्वरूपमाह तदिति। अनन्तस्य श्रीवलदेवस्यांशेन ज्योतिर्विभाग विशेषेण सम्भवः सदाविर्भावोयस्य तत् तथा तन्त्रैणैतदपि वोध्यते। अनन्तोऽंशो यस्यतस्य श्रीवल-देवस्यापि सम्भवो निवासो यत्र तदिति ॥२॥

श्रीवलदेव के अंश से ही आविर्भूत होते हैं।

अनन्तर श्रीकृष्ण का सर्वेश्वरत्व साधक नित्य धाम का प्रतिपादन सहस्रपत्र कमल श्लोक से करते हैं। जिस कमल में सहस्र पत्र हो उस प्रकार सन्निवेश विशिष्ट है, अग्रिम ग्रन्थ में धाम की भूमि चिन्तामणि गणमयी रूप से वर्णन करेंगे, अतः पद्म चिन्तामणिमय है, महत् सर्वोत्कृष्ट स्थान है। महत श्रीकृष्ण का महाभागवत का पद महा वैकुण्ठादि रूप है, उस धाम का विवरण अनेक प्रकार है, इस आशङ्का निरसन के लिए प्रकार विशेष से निश्चय कर देते हैं, गोकुल नाम स्थान है। गोकुल संज्ञा जिस की रूढ़ि रूप में हैं, गो गोप के आवास स्थल रूप ही है। रूढ़ि वृत्ति यौगिक वृत्ति का वाधक हैं, इस रीति से उक्त अर्थ का ही वोध होता है। इस अभिप्राय को प्रकट करने के लिए ही श्रीदशम में कहा है, भगवान् गोकुलेश्वर। यहाँ शीलार्थ में वरच प्रत्यय है। अतएव उक्तार्थ के आनुकूल्य से ही उत्तर ग्रन्थ की व्याख्या होनी चाहिये। कहा भी है–गोकुल वन वैकुण्ठ है। उन श्रीकृष्ण का धाम, श्रीनन्दयशोदा प्रभृति के साथ

कर्णिकारं महद् यन्त्रं षट्कोणं वज्रकीलकम् ।
षड़ङ्ग-षट्पदीस्थानं प्रकृत्या पुरुषेण च ।

सर्वमन्त्रगण सेवितस्य श्रीमदष्टादशाक्षरमन्त्रराजस्य मुख्यपीठं वर्णयति-षट्कोणं वज्रकीलकं षड़ङ्गषट्पदीस्थानं प्रकृत्यापुरुषेण च प्रेमानन्दमहानन्दरसेनावस्थितं यत् ज्योतिरूपेण मनुना कामवीजेन सङ्गतं कर्णिकारं महद्यन्त्रमस्ति ॥३॥

सर्वगणसेवितस्य श्रीमष्टादशाक्षरमन्त्रराजस्य वहु पीठस्य मुख्यपीठमिदमित्याह, कर्णिकारमिति द्वयेन। महद्यन्त्रमिति। यत् प्रकृतिरेव सर्वत्र यन्त्रत्वेन पूजार्थं लिख्यते इत्यर्थः। यन्त्रमेव दर्शयति, षट्कोणा अभ्यन्तरे यस्य तत्। बज्रकीलकं कर्णिकारे बीजरूपहीरककोलकशोभितम् ॥ यन्त्रे चकारोपलक्षिता।

योग्य महान्तः पुर है, उन सव के साथ ही श्रीकृष्ण वहाँपर विराजते हैं, इस को अग्रिम ग्रन्थ में कहेंगे । उस का स्वरूप वर्णन करते हैं। अनन्त श्रीवलदेव के अंश से ज्योति विभाग विशेष रूप से सदा आविर्भूत है, एवं श्रीवलदेव का भी निवास स्थल वहाँपर है ॥२॥

सर्वमन्त्र गण सेवित श्रीमदष्टादशाक्षर मन्त्र राज के अनेक पीठ हैं, उस में जो मुख्य पीठ है, उसका वर्णन करते हैं, "कर्णिकार" दो श्लोकों के द्वारा ! महद् यन्त्रं—सर्वत्र पूजा के निमित्त जिस यन्त्र का लिखन होता है वह ही महद् यन्त्र है। यन्त्र का स्वरूप कहतेहैं, मध्यमें षट् त्रिकोण है,त्रिकोण द्वय के सन्निवेश से षट् कोण होता है, बज्र कीलक है, अर्थात् कर्णिका में वीजरूप हीरक कीलक शोभित है, च कार के द्वारा जानना होगा कि-चतुर्थी विभक्ति युक्त कृष्ण शब्द कीलरूप में शोभित है, षट् कोण होने का प्रयोजन व्यक्त करते हैं, छ अङ्ग जिस के हैं वह षट् पदी हैं, श्रीमदष्टारशाक्षरी की संज्ञा है, षट् पदी, उसका स्थान। प्रकृति—मन्त्र का स्वरूप, वह स्वयं ही श्रीकृष्ण हैं, आप स्वयं ही कारण हैं। ऋष्यादि स्मरण

प्रेमानन्दमहानन्दरसेनावस्थितं हि यत् ।
ज्योतीरूपेणमनुना कामबीजेन सङ्गतम् ॥३॥

चतुर्थ्यन्ता चतुरक्षरी कीलरूपा ज्ञेया । षट् कोणत्वे प्रयोजनमाह । षट् अङ्गानियस्या सा षट् पदी श्रीमदष्टादशाक्षरी तस्याः स्थानम् । प्रकृतिर्मन्त्रस्य स्वरूपं स्वयमेव श्रीकृष्णः, कारणरूपत्वात् । तच्चोक्तं ऋष्यादि स्मरणे–कृष्णः प्रकृतिरिति । पुरुषश्च स एव तदधिष्ठातृ-देवतारूपः, ताभ्यामवस्थितमधिष्ठितम् । स हि मन्त्रे चतुर्धाप्रतीयते । मन्त्रस्य कारणरूपत्वेन, अधिष्ठातृ देवतारूपत्वेन, वर्ण समुदाय रूपत्वेन, आराध्यरूपत्वेन च । तत्र कारण रूपत्वेन अधिष्ठातृदेवता रूपत्वेनात्रोच्यते । आराध्यरूपत्वेन प्रागुक्तः । ईश्वरः परमः कृष्ण इति । वर्णरूपत्वेनाग्रत उद्धरिष्यते । कामः कृष्णाय इति । यथोक्तं हयशीर्षपञ्चरात्रे, वाच्यत्वं वाचकत्वञ्च देवतामन्त्रयोरिह । अभेदनोच्यते ब्रह्मन् तत्त्वविद्भिर्विचारतः ” इति । गोपाल तापनी

में कहा गया है, कृष्ण ही प्रकृति हैं, पुरुष भी श्रीकृष्ण हैं, वह ही अधिष्ठातृ देवतारूप हैं, उभय रूप से ही अधिष्ठित हैं। श्रीकृष्ण, मन्त्र में चार प्रकार में प्रतीत होते हैं, मन्त्र के कारण रूप में, अधिष्ठातृ देवता रूपमें वर्णसमुदाय रूप में, आराध्य रूप में। उस में से कारण रूप–एवं अधिष्ठातृरूप का वर्णन इस स्थल में करते हैं। आराध्य रूप का वर्णन पहले हुआ है, ईश्वरः परमः कृष्णः शब्द से। वर्णरूप में श्रीकृष्ण हैं, उसका समन्वय आगे करेंगे। कामः कृष्णाय’ इस स्थल में। हयशीर्ष पञ्चरात्र में उक्त है, हे ब्रह्मन् ! तत्त्वविद्गण विचार पूर्वक निर्णय करते हैं, कि–देवतामन्त्र के साथ शब्द अर्थ का सम्बन्ध वाच्य वाचक होने पर भी अभेद से ही कहा जाता है। गोपाल तापनी श्रुति में उक्त है, जिस प्रकार एक वायु शरीर में प्रविष्ट होकर पाँच रूप धारण करते हैं, उस प्रकार कृष्ण जगत् वासियों के हित के निमित्त शब्द के द्वारा पञ्च-पद होते हैं। अतएव प्रेम रूप जो आनन्द चिन्मयरस, उस का जो

श्रुतिषु, "वायु र्यथैको भुवनं प्रविष्टो जन्ये जन्ये पञ्चरूपो बभूव। कृष्ण स्तथैकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासौ पञ्चपदो विभाति। इति।

क्वचिद् दुर्गाया अधिष्ठातृत्वं शक्तिशक्तिमतोरभेदविवक्षया यथा च वृहद् गौतमीये, राधा दुर्गा, शिवा दुर्गा, लक्ष्मी दुर्गा प्रकीर्त्तिता। गोपाल विष्णु पूजायामाद्यन्ता नतुमध्यगा अतएवोक्तं गौतमीयकल्पे, यः कृष्णः सैवदुर्गास्याद् या दुर्गा कृष्ण एव स अनयो रन्तरादर्शी संसारान्नो विमुच्यते। इत्यादि। अतः स्वयमेव श्रीकृष्ण स्तत्र स्वरूपशक्तिरूपेण दुर्गा नामेति। तस्मान्नेयं मायांशभूता दुर्गातिगम्यते। निरुक्तिश्चात्र कृच्छ्रेण दुर्गाराधनादि बहुप्रयासेन गम्यते ज्ञायते इति। तथाच श्रीनारदपञ्चरात्रे श्रुतिविद्या सम्वादे "जानात्येका पराकान्तं सैव दुर्गा तदात्मिका। या परा परमाशक्ति र्महाविष्णु स्वरूपिणी। यस्या विज्ञानमात्रेण पराणां परमात्मनः।

विशेष परिपाक अर्थात् गाढ़ अवस्था, वह भी इस धाम में विराजित है, ज्योति रूप अर्थात् स्व प्रकाश कामवीज के सहित उक्त मन्त्रराज उक्त यन्त्र में अवस्थित हैं।

मन्त्राधिष्ठातृ देवतारूप में दुर्गा का जो उल्लेख वहाँपर मिलता, वह शक्ति शक्तिमान् में अभेद कथन के अभिप्राय से है। वृहद् गौतमीय में कथित है, राधा दुर्गा, शिवादुर्गा, लक्ष्मीदुर्गा प्रकीर्त्तिता। गोपाल विष्णु की पूजा में आद्यन्त ग्रहण हैं. मध्यम दुर्गा का नहीं। अतएव गौतमीय कल्प में कहा है—जो कृष्ण है वह ही दुर्गा है. जो दुर्गा है, वह ही कृष्ण है उभय में भेददर्शी व्यक्ति संसार से मुक्त नहीं होता है, अतएव स्वयं ही श्रीकृष्ण स्वरूप शक्ति रूप में दुर्गा नाम धारण करते हैं। अत यह मायांश भूता दुर्गा नहीं है। दुर्गा शब्द की निरुक्ति भी इस प्रकार है, कृच्छ्रसे गुर्वाराधनादि प्रयास से जानी जाती है, वह दुर्गा है। श्रीनारद पञ्चरात्र के श्रुति विद्यासम्वाद में उक्त है; एका परा शक्ति कान्त कृष्ण को जानती है, वह तदात्मिका दुर्गा है, जो परा परमाशक्ति, महाविष्णु स्वरूपिणी है, जिस को जानने से ही परतत्त्व के भी परमात्मा देव देव की प्राप्ति

तत् किञ्जल्कं तदंशानां तत्पत्राणि श्रियामपि ॥४

मुहूर्त्तादेव देवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा। एकेयं प्रेम सर्वस्व स्वभावा श्रीकुलेश्वरी। अनया सुलभोज्ञेय आदि देवोऽखिलेश्वरः। भक्ति भंजन सम्पत्ति भंजते प्रकृतिः प्रियम्। ज्ञायते अत्यन्त दुःखेन सेयं प्रकृतिरात्मनः। दुर्गेति गीयते सद्भिरखण्ड रसवल्लभा। अस्या आवरिका शक्ति र्महामायाखिलेश्वरी। यया मुग्धं जगत् सर्वं सर्वे देहाभिमानिनः" इति च। तथा च सम्मोहन तन्त्रे जयां प्रति श्री-दुर्गावचनम् यन्नाम्नानाम्नी दुर्गाहं गुणै र्गुणवती ह्यहं। यद् वैभवा महालक्ष्मी राधा नित्यापराद्वयेति। किञ्च प्रेमरूपा ये आनन्द महानन्दरसास्तत् परिपाकभेदास्तदात्मकेन, तथा ज्योतीरूपेण स्व प्रकाशकेन मनुना मन्त्ररूपेन काम वीजेन सङ्गतमिति मूलान्तर्गतत्वे ऽपि कामवीजस्य पृथगुक्तिः कुत्रचन स्वातन्त्र्यापेक्षया ॥३॥

तदेवं तद्धामोक्त्वा तदावरणान्याह तस्य कर्णिकारूप धाम्नः

स्वल्प समय में होती है, अन्यथा नहीं होती है। वह शक्ति प्रेम सर्वस्व स्वभावा श्रीकुलेश्वरी श्रीराधा हैं। इनसे ही आदि देव अखिलेश्वर सुलभ हैं। वह भक्ति, है, भजन सम्पत्ति है, प्रकृति होकर प्रिय का भजन करती है। अत्यन्त दुःख से परिज्ञात होती है, अतः सज्जनगण उन्हें अखण्ड रस वल्लभा दुर्गा कहते हैं। इन की आवरिका शक्ति, महामाया अखिलेश्वरी है, जिन्होंने देहाभि-मानियों को मुग्ध किया है॥ सम्मोहन तन्त्र में जया के प्रति श्री दुर्गा का कथन इस प्रकार है, जिनके नाम और गुण से मैं दुर्गा नाम से ख्यात हूँ। और गुणवती भी हूँ। उस वैभववती महालक्ष्मी राधा नित्या पराद्वया है। और भी प्रेमरूप जो आनन्द महारस है, उसका परिपाक भेद समूहात्मक रूप से ही स्थित है, तथा ज्योतिरूप स्व प्रकाशरूप कामवीजात्मक मन्त्र से युक्त है। मूलान्तर्गत होने पर भी पृथक् कथन,-कामवीजका,स्वातन्त्र्य की अपेक्षा से हुआहै।३।

श्रीकृष्ण धाम का वर्णन के अनन्तर उस के आवरण का

किञ्जल्कं किञ्जल्का: शिखरावलिवलितप्राचीरपङ्क्तय: तच्च तदंशानां परिकराणां धामेत्यर्थ: । तत् पत्राणि कमलस्य पत्राणि श्रियां तत् प्रेयसीनां गोपीरूपाणां श्रीराधादीनामुपवन रूपाणि धामानीत्यर्थ: ।४

तदेवं तद्धामोक्त्वा तदावरणान्याह तदित्यर्द्धेन । तस्य कर्णिका रूप धाम्न: किजल्कं किञ्जल्का: शिखरावलिवलित प्राचीर-पङ्क्तय इत्यर्थ: । तच्च तदंशाना तस्मिन्नंशोदायो विद्यते येषां परम प्रेमभाजां सजातीयानां धामेत्यर्थ: । गोकुलाख्यमित्युक्तिरेव । तेषां सजातीयत्वञ्चोक्तं श्रीवादरायणिना, एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमान: स्वजातिभि:, विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सव: "इति कंस-वधान्ते श्रीव्रजराजं प्रति स्वयं भगवता—"ज्ञातीन् वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखमिति । अतएव कमलस्य पत्राणि श्रियां तत् प्रेयसीनां गोपीरूपाणां श्रीराधादीनामुपवन रूपाणि धामानीत्यर्थ: । गोपीरूपत्वञ्चासां मन्त्रस्य तन्नाम्नालिङ्गितत्वात् राधादित्वञ्च"

वर्णन अर्द्धश्लोक से करते हैं। कर्णिका रूप धाम का किञ्जल्क अर्थात् शिखरावलियुक्त प्राचीर पङ्क्ति समूह हैं। वह परम प्रेम पात्र सजातीय ज्ञातीवर्गका आवासस्थान है, कारण–गोकुल शब्द से ही कथन हुआ, वे सब श्रीकृष्ण के सजातीय हैं, उसका विवरण प्रदान श्रीवादरायणि ने कियाहै, इस प्रकार ककुद्मि को मारकर स्वजातीय व्यक्तियों से प्रशंसित होकर गोपियों के नयनोत्सव श्रीकृष्ण श्री-बलराम के सहित गोष्ठ में प्रविष्ट हुए। कंस वध के पश्चात् श्री व्रजराज के प्रति स्वयं भगवान् ने कहा है, सुहृदों को सुखीकरके आप सब ज्ञातीवर्ग को देखने को मैं आऊँगा । अतएव कमल के पत्र समूह श्रीकृष्ण के प्रेयसी रूप गोपीगण श्रीराधा प्रभृतियों के उप वन रूप धाम समूह हैं। उनके प्रेयसीवर्ग गोपी हैं। उसका विवरण गोपीशब्द युक्त उनके मन्त्र से मिलता है। राधादिका विवरण वृहद् गौतमीय से मिलता है, देवी, कृष्णमयी राधिका, परदेवता, सर्व लक्ष्मीमयी सर्वकान्ति, सम्मोहिनी परा है। मत्स्य पुराण मैं उक्त है, वाराणसी में विशालाक्षी, पुरुषोत्तम में विमला, द्वारावती में

देवीकृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता सर्व लक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा" इति वृहद् गौतमीयात्" वाराणस्यां विशालाक्षी विमला पुरुषोत्तमे। रुक्मिणी द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने" इति मत्स्यपुराणात्। राधयामाधवो देवो माधवेनैव राधिका। विभ्राजन्ते जनष्वा" इति। ऋक् परिशिष्टश्रुतौ च। अत्र विशेष जिज्ञासायां कृष्णार्चन दीपिका द्रष्टव्या। तत्र पत्राणामुच्छ्रित प्रान्तानां वर्त्माण्यग्रिम सन्धिषु तु गोष्ठानि ज्ञेयानि। अखण्डकमलस्य गोकुलत्वात् तथैव गोकुल समावेशाच्च गोष्ठं तथैव, यत्तु स्थानान्तरे वचनमस्ति— "सहस्रारं पद्मं दलततिषु देवीभिरभितः परीतो गोसङ्घैरपि निखिल किञ्जल्कमिलितैः। वराटे यस्यास्ति स्वयमखिलशक्त्या प्रकटित-प्रभावः सत्यः श्रीपरमपुरुषस्तं किल भजे"इति पद्मबीजकोषे" इत्यर्थः। तत्र गोसंख्यैरिति तु पाठः समञ्जसः। गोसंख्याश्च गोपाः" इति। गोपे गोपालगोसंख्यगोधुगाभीरवल्लभा" इत्यमरः। वराट इति, वराटानां अभ्यन्तरे कर्णिका मध्यदेश" इत्यर्थः। अखिल शक्त्या प्रकटितः प्रभावः येन सः परम पुरुषः श्रीकृष्ण इत्यर्थः ।।४।।

रुक्मिणी वृन्दावन में श्रीराधा हैं। ऋक् परिशिष्ट ग्रन्थ में उक्त है, माधव देव राधिका के साथ, राधिका माधव के सहित शोभित हैं। इस विषय में विशेष जिज्ञासा हो तो कृष्णार्चन दीपिका ग्रन्थ को देखें। उन्नत प्रान्त पत्र समूह के सन्धिस्थल के प्रथम में पथ समूह है, एवं अग्रभाग में गोष्ठ, अर्थात् धेनु वृन्द के वासस्थान हैं, एक अखण्ड कमल ही गोकुल है, कमल के समान ही गोकुल का समावेश है, अतएव गोष्ठ की स्थिति भी उस प्रकार ही है। स्थानान्तर में जो वचन है-सहस्र पत्र युक्त कमल है, दल समूह में देवी समूह के वासस्थान है, चतुर्दिक में गोष्ठ है, पद्मकोष वीज में स्वयं श्रीपुरुषोत्तम अखिल शक्ति वर्ग के साथ विराजित है, उनका मैं भजन करता हूँ वहाँ गो संख्यैः" ऐसापाठ होना ठीक है। गो संख्य शब्द से गोपों का वोध होता है। अमरकोषकार के मत में गोपे गोपाल गो संख्य गोधुगाभीर वल्लभाः" है। वराट शब्द से वराटों के अभ्यन्तर

चतुरस्रं तत्परितः श्वेतद्वीपाख्यमद्भुतम् ।
चतुरस्रं चतुर्मूर्त्तेश्चतुर्द्धाम चतुष्कृतम् ॥
चतुर्भिः पुरुषार्थैश्च चतुर्भिर्हेतुभिर्वृतम् ।
शूलैर्दशभिरानद्धमूर्द्धाधो दिग् विदिक्ष्वपि ॥

अथ गोकुलावरणान्याह चतुरस्रमिति चतुर्भिः श्लोकैः। तत् तस्य गोकुलस्य वहिः परितः सर्वतः चतुरस्रं चतुष्कोणात्मकं अद्भुतं श्वेत द्वीपाख्यं स्थानमस्ति। कथम्भूतम् तत्–चतुर्मूर्त्तेश्चतुष्कृतम् चतुरस्रं चतुर्द्धाम वर्त्तते। चतुर्भिः पुरुषार्थैश्च चतुर्भिः हेतुर्भिर्वृतम् ऊर्द्धाधो दिग्विदिक्ष्वपि शूलैः दशभि रानद्धम्। अष्टभि र्निधिभिः अष्टभिः सिद्धिभिस्तथा युक्तम्, दशभिर्दिक्पालैर्मनुरूपैश्च परितोवृतम् श्यामैः गौरैश्च रक्तैश्च शुक्लैश्च पार्षदर्षभैः ताभिः अद्भुताभिः शक्तिभिः समन्ततः शोभितम् ॥५॥

अथ गोकुलावरणान्याह चतुरस्रमिति चतुर्भिः। तस्य गोकुलस्य वहिः सर्वतश्चतुरस्रं चतुष्कोणात्मकं स्थानंश्वेतद्वीपाख्यं, तदेतदुपलक्षणं गोलोकाख्यञ्चेत्यर्थः। यद्यपि गोकुले श्वेतद्वीपत्वम–

में कर्णिका मध्य देश में जानना होगा, जिन्होंने अखिल शक्ति के द्वारा निज प्रभाव को प्रकटित किए हैं, वह परम पुरुष श्रीकृष्ण हैं।४

अनन्तर गोकुल के आवरण का वर्णन चार श्लोकों से करते हैं। उस गोकुल के बाहर चतुष्कोणात्मक श्वेतद्वीप नामक एक अद्भुत धाम है, यहाँ केवल श्वेतद्वीपका ही उल्लेख है, किन्तु उस से गोलोक नाम को भी जानना होगा, वस्तुत गोकुल की श्वेत द्वीप संज्ञा है, उस के मध्य में ही यह सव स्थान है, तथापि एकविशेष नाम द्वारा कथन से उस नाम से मध्यवर्त्ति स्थान का भी वोध होता है। अन्तर्मण्डल की संज्ञा वृन्दावन है, श्वेत द्वीप, गोलोक गोकुल, वृन्दावन, व्रज प्रभृति शब्द का प्रयोग विभिन्न तात्पर्य होता से रहता है। सायम्भुवागम में वर्णित है, विशुद्धात्मा वहाँपर इन सब का ध्यान क्रम पूर्वक करे, कहकर उस के मध्य में नाना वृक्ष विहङ्गम

अष्टमि र्निधिभि र्युक्तमष्टभिः सिद्धिभि स्तथा ।
मनुरूपैश्च दशभिर्दिकपालैः परितोवृतम् ।।
श्यामै र्गौरैश्च रक्तैश्च शुक्लैश्च पार्षदर्षभैः ।
शोभितं शक्तिभिस्ताभि रद्भुताभिः समन्ततः ।।५।

स्त्येव तदवान्तर भूमिमयत्वात्, तथापि विशेषनाम्नोक्तत्वात्तैनैव तत् प्रतीयते " इति तथोक्तम् ।। किन्तु चतुरस्रेऽप्यन्तर्मण्डलं श्रीवृन्दा-वनाख्यं ज्ञेयम् । तथा च सायम्भुवागमे-ध्यायेत्तत्रविशुद्धात्मा इदं सर्वं क्रमेण च ।। इत्यादिकमुक्त्वा तन्मध्ये, वृन्दावनं कुसुमितं नाना वृक्षविहङ्गमम् संस्मरेत्' इत्युक्तम् । तथाच वृहद् वामने श्रुतीनां प्रार्थना पूर्वकानि पद्यानि–आनन्दमात्रमिति यद्वदन्तिहि पुराविदः । तद्रूपं दर्शयास्माकं यदिदेयो वरोहि नः । श्रुत्वैतद् दर्शयामास स्व लोकं प्रकृतेः परम् । केवलानुभवानन्दमात्रमक्षरमद्वयम् । यत्र वृन्दावनं नाम वनं काम दुघैः द्रुमैः । मनोरमं निकुञ्जाढ्यं सर्वर्तु सुख संयुतम्'' ।। इत्यादि तच्च चतुरस्रं, चतुर्मूर्त्तेश्चतुर्व्यूहस्य वासु-देवादि चतुष्टयस्य, चतुष्ककं चतुर्द्धा विभक्तं चतुर्द्धाम । किन्तु देव लीलत्वात् तदुपरि व्योमयानस्था एव ज्ञेयाः हेतुभिः । तत् पुरुषार्थ-

---

युक्त कुसुमित वृन्दावन का स्मरण करे । इस प्रकार कहा है । वृहद् वामन पुराण में श्रुतियों के प्रार्थना पूर्वक पद्य समूह, इस प्रकार है, मुनिगण जिनको आनन्द मात्र ही कहते हैं, हमे यदि वर देना हो तो उस रूप का दर्शन करवाओ । शुनकर प्रकृति से अतीत निज लोक का दर्शन उन्होंने कराया, जो केवल अनुभवानन्द मात्र है, अक्षर, अद्वय स्वरूप है, जहाँ वृन्दावन नामक वन हैं, कल्प द्रूमों से पूर्ण है, मनोरमनिकुञ्जयुक्त है, और सकल ऋतुओं में सुखकर है । वह चतुष्कोण है, और चतुष्कोण में चतुर्व्यूह वासुदेव सङ्कर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध के पृथक् पृथक् चार धाम हैं, किन्तु देवलील होने से उपर में व्योमयान में रहते हैं । हेतुओं के साथ, पुरुषार्थ साधनों के साथ

साधनैः। मनुरूपैः स्व स्वमन्त्रात्मकैः दिक् पालैः-इन्द्रादिभिः। श्यामादयः चत्वारो वेदाः, तैरित्यर्थः। कृष्णञ्च तत्रछन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः" इति दशमात्। शक्तिभिः-विमलादिभिः। तदेवं गोलोक नामा अयं लोकः श्रीभागवते साधितः।

तथा श्रीदशमे,—नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत्। ते चोत्सुक्यधियो राजन् मत्वा गोपास्तमीश्वरम्। अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः। इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम्। सङ्कल्प सिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः उच्चावचासुगतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमम्। इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकारुणिको विभुः। दर्शयामास स्वं लोकं गोपानां तमसः परम्। सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। यद्धिपश्यन्तिमुनयो

धर्म अर्थ, काम, मोक्ष के सहित विराजित हैं, निज निज मन्त्रात्मक इन्द्रादि दशदिक् पालों से शोभित हैं, एवं श्याम, गौर, रक्त, शुक्ल वर्ण विशिष्ट वेदात्मक पार्षद श्रेष्ठों के द्वारा परिवृत हैं। वेदगण की भी मूर्त्ति हैं, श्रीदशम में वर्णित है, वेदों के द्वारा श्रीकृष्ण स्तुत हुये थे। विमला प्रभृति शक्तियों से युक्त हैं, इस प्रकार गोलोक नामक स्थान का वर्णन श्रीमद् भागवत में है।

श्रीदशम में वर्णित है-श्रीनन्दमहाराजने वरुण लोक का वृत्तान्त ज्ञाति परिजनों के समीप में कहे थे, वरुण लोंक में कृष्णको देखकर लोक पालगण ससम्भ्रम उपस्थित होकर उनकी नतिस्तुति किये, इस अलौकिक आश्चर्य घटना को देखकर नन्द महाराज विस्मित हो गये थे, पश्चात् वरुण लोक से मुक्त होकर जब व्रज में आये तो स्वजनों के पास उस वृत्तान्त को कहेबिना आप से रहा नहीं गया, परिजन वर्ग भी उसे सुनकर अति उत्सुक हो गये, और अपनेसे विजातीय शक्ति सम्पन्न जानकर कृष्ण को ईश्वर मानने लगे। मृत्यु के बाद अपनी अपनी गति क्या होगी उसे जानने के लिए सब उत्सुक हो गये, और कृष्ण को ईश्वर मानकर पुछने लगे। भगवान् कृष्ण

गुणापाये समाहिताः। ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः। ददृशु र्ब्रह्मणोलोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा॥ नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्द निर्वृताः। कृष्णञ्च तत्र छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिता इति। अतीन्द्रियमदृष्टपूर्वं स्वगतिं स्वधाम। सूक्ष्मां दुर्ज्ञेयां उपाधास्यत् उपाधास्यति। अस्मान् प्रापयिष्यतीत्यर्थः। इति संकल्पितवन्त इति शेषः। जनोऽसौ व्रजवासी मम स्वजनः। सालोक्य सार्ष्टि" इत्यादि पद्ये 'जना' इतिवदुभयत्राप्यन्यजनत्वमप्रस्तुतमिति। व्रजजनस्य तु तदीयस्वजनतमत्वम् तेन स्वयमेव विभावितं, "तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत् परिग्रहम्। गोपाये स्वात्म योगेन सोऽयं मे व्रत आहितः॥ इत्यनेन। स एतस्मिन् प्रापञ्चिके

भी निज जनों की परलोक विषयिणी उत्सुकता जानकर उन सबके सन्तोषार्थ स्वयं चिन्ता करने लगे। चिन्ता इस प्रकार रही, लोक मनुष्य शरीर प्राप्तकर कर्मानुरूप उच्चनीच शरीर में भ्रमन् कर सुख दुःख की उपलब्धि करते हैं, और अपनी स्थिति को नहीं जानते हैं, इस प्रकार चिन्ताकर भगवान् महाकारुणिक विभु कृष्णने गोपों को प्रकृत्यतीत निज लोक का दर्शन करावाया। जिसको सत्य, ज्ञान, अनन्त ब्रह्म ज्योति सनातन रूप से कहते हैं, मुनिगण प्रकृत्यतीत होकर समाहित बुद्धि से जिस को देखते हैं। श्रीकृष्ण व्रजवासियों को ब्रह्महृद में लेगये, और डूबकी लगवाकर उठालिये उन्होंने डूबकर ब्रह्मलोक को देखा, अक्रूर ने भी पहले वहाँपर ही ब्रह्मलोक को देखा था। नन्दादि गोपगण ब्रह्म लोक को देख कर परमानन्द में विभोर हो गए, और वहाँ कृष्ण को भी उन्होंने देखा, जो वेद गण के द्वारा स्तुत हो रहे थे। उस से वे सब आश्चर्य चकित हो गए। पहले कभी आप लोकोंने नहीं देखा था, वह अतीन्द्रिय था, निज निज गति के धाम को उन्होने निजनेत्रों से देखा सूक्ष्मा दुर्ज्ञेय स्थान, तदनुसार ही कृष्ण ने उन सब को दिखलाया, वह जन" इस से व्रजवासी जन कृष्ण के निज जन हैं। सालोक्य सार्ष्टिसामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं

लोके अविद्याभि: या उच्चावचा देवतिर्य्यगादि रूपा गतयस्तासु स्वां गतिं भ्रमन् तन्मिश्रतयाभिव्यक्तेः तन्निर्विशेषतया जानन्, तामेव स्वां गतिं भवेदेत्यर्थः मदीय लौकिक लीला वेशेन ज्ञानांश तिरोधानादिति भाव:। इति नन्दादयो गोपा: कृष्णरामकथां मुदा। कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविदन् भववेदनामिति श्रीदशमोक्तेरविद्याकाम कर्मणां तत्रासामर्थ्यात्। गोपानां स्वं लोकं—गोलोकमिति। अर्थात्तान् प्रत्येव सन्दर्शयामास। तमस: प्रकृते: परं स्वरूपशक्त्याभि

जना: " यह जिस प्रकार जन शब्द से निज जन का ही बोध होता है, वैसा ही प्रस्तुत स्थल में जन शब्द भी निज जन का बोधक है, अन्य जन का ग्रहण प्रासङ्गिक नहीं है। व्रज जन तो श्रीकृष्ण के स्वजन तम हैं, इस को उन्होंने स्वयं ही कहा है, अत: यह गोष्ठ मेरीशरण में है, मैं अपने बल वीर्य से इसे रक्षा करूँगा, यह मेरा व्रत है। यह कथन श्रीकृष्ण का है। इस प्रापञ्चिक लोक में निज जन गण अवतीर्ण होने पर देव तिर्य्यगादि अविद्या के द्वारा रचित उच्चावच गति को अनुभव कर उस से मिश्रित रूप से ही आपने को मानकर विभोर हो गये थे और निज स्वरूप को भूल ही गये। श्रीकृष्ण के लीलावेश से अनुसन्धान रूप ज्ञानांश तिरोहित होकर रहा। श्री दशम में उक्त है, नन्दादि गोपगण परमानन्द से कृष्ण राम की कथा को गाते गाते समय अतिवाहित करते थे, और भव वेदना का अनु भव भी उनका नहीं था, इस से अविद्या काम कर्म का प्रभाव उनपर नहीं था। अविद्या का प्रभाव प्राकृत जीव पर होता है, जो कृष्ण वहिर्मुख है, परिकरगण के उपर नहीं होता है, गोपों को जो लोक कृष्णने दिखलाया था वह गोलोक था। उसका दर्शन ही उन्होंने करवाया। वह लोक प्रकृति से अतीत है, स्वरूप शक्ति से ही अभिव्यक्त होता है, अतएव वह लोक सच्चिदानन्द रूप से कथित होता है. अतएव कहा है, सत्यमिति। अनन्तर श्रीवृन्दावन के किस स्थान में उस प्रकार दर्शन हुआ, कहते हैं,—ब्रह्महृद-अक्रूर तीर्थ को कहते हैं, कृष्ण ही व्रजवासियों को वहाँपर ले गए थे, और

व्यक्तत्वात्। अतएव सच्चिदानन्दरूप एवासौ लोक इत्याह सत्य मिति। अथ श्रीवृन्दावने तादृशदर्शनं कतमदेशस्थितानां तेषां इत्यत: आह तेत्विति। ब्रह्महृदं अक्रूर तीर्थं कृष्णेन नीता, पुनश्च तेनैव मग्ना: मज्जिता: पुनश्च तस्मात्तेनैवोद्धृता:–उद्धृत्य पुन: स्वस्थानं प्रापिता: सन्तो, ब्रह्मण: परमबृहत्तमस्य तस्यैव लोकं गोलोकाख्यं ददृशु:। मूर्द्धभि: सत्यलोकस्तु, ब्रह्मलोक: सनातन' इति द्वितीये। वैकुण्ठान्तरस्यापि तत्तयाख्याते:। कोऽसौ ब्रह्महृद: ? तत्राह–यत्रेति।

पुरेत्यतत् प्रसङ्गाद् भाविकाल इत्यर्थ:। पुरा पुराणे निकटे प्रबन्धातीत भाविषु' इति कोषकारा: " सेयञ्च परिपाटी तत्तीर्थ महिमानं लक्ष्यमेव विधातुमिति भाव:। तत्रस्वांगतिमिति तदीयता निर्देशो, गोपानां स्वलोकमिति षष्ठी स्वशब्दयो निर्देश:। कृष्णमिति साक्षात् निर्देशच वैकुण्ठान्तरं व्यवच्छिद्य श्रीगोलोकमेव स्थापित-वानिति। तथाच हरिवंशे शक्रवचनम्। स्वर्गादूर्द्ध ब्रह्मलोक ब्रह्मर्षि गण सेवित:। तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषाञ्च महात्मनाम्।

उन्होंने ही जल में निमज्जित किया, और उन्होंने उठवाया, उठवा कर पुनर्वार निजस्थान में रखा। ब्रह्मलोकका अर्थ परम बृहत्तम का लोक—गोलोक नामक स्थान को उन्होंने देखा द्वितीय स्कन्ध में उक्त है, उपरिस्थित सत्यलोक है, ब्रह्मलोक तो सनातन है। वैकुण्ठान्तर को भी ब्रह्म लोक शब्द से कहते हैं। वह ब्रह्महृद कौन-है—कहते हैं, अक्रूरदृष्ट ब्रह्महृद है।

उक्त प्रसङ्ग के भविकाल में, उस के पश्चात् ही अक्रूर का प्रसङ्ग हुआ था, पूर्व में नहीं, पुरा शब्द के अर्थ–पुराण, निकट, में प्रवन्धातीत भाविकाल होते हैं। यह परिपाटी उस तीर्थ की महिमा को प्रचार करने के उद्देश्य से ही हुई है। स्वां गति–निर्देश से उन सव की गति को जाननी होगी, तदीयता का निर्देश हुआ है, गोपों का निज लोक, यहाँ गोप शब्द के सामीप्य के द्वारा उस अर्थका ही निर्देश हुआ है। कृष्ण को प्रयोग से साक्षात् निर्देश हुआ है, अत:

तस्योपरि गवां लोकः साध्यास्तं पालयन्ति हि। स हि सर्वगतः कृष्ण महाकाशगतो महान्। उपर्य्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी। यां न विद्म वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम्। गतिः शमदमाढ्यानां स्वर्गः सुकृतः कर्मणां। ब्रह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परागतिः। गवामेव हि यो लोकः दुरारोहा हि सा गतिः। स तु लोकः त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम्॥ इति। तत्रापातप्रतीतार्थान्तरे स्वर्गादूर्द्ध ब्रह्मणो लोक इत्ययुक्तं स्यात् लोकत्रयमतिक्रम्योक्तेः। तत्र सोमगतिश्चैवेत्यपि न सम्भवति चन्द्रस्यान्येषामपि ज्योतिषां ध्रुवलोकाधस्तादेव गतेः। तत्र साध्यास्तं पालयन्तीत्यपि नोपपद्यते। देवयोनिरूपाणां तेषां स्वर्गलोकस्यापि पालनमसम्भवम्। किमुत तदुपरि गोलोकस्य। तथा तस्य लोकस्य

वैकुण्ठान्तर का निरास कर श्रीगोलोक ही स्थापित हुआहै। हरिवंश पुराण में शक्रकेवचन से ज्ञात होता है कि–स्वर्ग के उपरिभाग में ब्रह्मर्षिगण सेवित ब्रह्मलोक है, वहाँ सोम की और प्रभावशाली महात्माओं की गति है, उसके उपरितन देश में गोलोक है, उस का पालन साध्य जनगण करते हैं, हे कृष्ण! वह लोक सर्वगत है, महा काशगत है, महान् है, उस के भी उपरितन देश में तुम्हारी तपोमयी गति है, पितामह को पुछकर भी हमसब उस को जानने में असमर्थ रहें, पुण्य कर्म परायण शमदमादियुक्त व्यक्तियों के लिए स्वर्गलोक है, और ब्रह्म में तपस्या में निरत जनगण के लिये ब्रह्मलोक ही परा गति है। गोलोक नामक स्थान दुरारोह है, हे कृष्ण हे वीर! उस लोक विपन्न होनेपर कृतात्मा धृतिमान् आपने उसको धारण किया, और गोओं की विपत्ति को हटाया। इस प्रकार आपात प्रतीति से स्वर्ग के उपरि भाग में ब्रह्मलोक का बोध होना अयुक्त होगा। लोकत्रय को अतिक्रम करके ही उसका वर्णन होता है, वहाँ सोम की गति है, वह भी सम्भव नहीं है, चन्द्र की एवं अन्यान्य ग्रहनक्षत्रों की गति ध्रुवलोक के नीचे ही है। साध्यगण उस का पालन करते हैं, कहना भी युक्ति युक्त नहीं होगा। देवशरीर वाले के लिए स्वर्ग

सुरभिलोकत्वे सति सर्वगत इत्यनुपपन्नं स्यात्। श्रीभगवद्विग्रह लोकयोरचिन्त्यशक्तित्वेन विभुत्वं घटते न पुनरस्येति। अतएव सर्वातीतत्वात् तत्रापि तवगतिरित्यपि शब्दो विस्मये प्रयुक्तः। यां न विद्मो वयं सर्वे" इत्यादिकञ्चोक्तम्। तस्मात् प्राकृतगोलोकादन्य एवासौ गोलोक इति सिद्धम्। तथात्र मोक्ष धर्मे नारायणीयोपाख्याने श्रीभगवद्वाक्यं, एवं बहुविधै रूपैश्चरामीह वसुन्धराम्। ब्रह्मलोकञ्च कौन्तेय गोलोकञ्च सनातनमिति! तस्मादयमर्थः स्वर्ग शब्देन, भू र्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुव र्लोकस्तुनाभितः। स्वर्लोकः कल्पितो मूर्द्ध्ना इति वा लोककल्पना॥ इति द्वितीयानुसारेण स्वर्लोक मारभ्य सत्यलोकपर्य्यन्तं लोकपञ्चकमुच्यते तस्मादूर्द्धमुपरि ब्रह्म-लोकः ब्रह्मात्मको लोकः ब्रह्मलोकः सच्चिदानन्द रूपत्वात् ब्रह्मणो-भगवतो लोक इति वा। मूर्द्धभिः सत्यलोकस्तु–ब्रह्मलोकः सनातनः इति द्वितीयात्। तथा च टीका– ब्रह्मलोको वैकुण्ठाख्यः" सनातनो नित्यः नतु सृज्यः प्रपञ्चान्तर्वर्त्तीत्येषा। श्रुतिश्च एष ब्रह्मलोकः,

---

का पालन ही असम्भव है, उस के उपरि भाग में स्थित गोलोक का पालन उन से कैसे होगा। तथा उक्त लोक सुरभी लोक नाम से प्रसिद्ध है, वह सर्वगत है, यह कहना भी अयुक्त होगा। श्रीभगवद् विग्रह के समान श्रीभगवल्लोक का भी व्यापकत्व अचिन्त्य शक्ति से होता है। किन्तु अपर लोक का वैसा होना सम्भव नहीं हैं। अतएव सर्वातीत हेतु वहाँपर भी तुम्हारी गति है, रहाँ अतिविस्मय को सुचित करने के लिए अपि शब्द का प्रयोग हुआ है। जिस को हम सब नहीं जानते हैं, यह कहा है। अतएव प्राकृत गोलोक से वह गोलोक अन्य ही है, मोक्षधर्मीय नारायणीयोपाख्यान में श्रीभगवद् वाक्य-भी इस प्रकार है। हे कौन्तेय! इस प्रकार बहुविध रूप के द्वारा मैं वसुन्धरा में विचरण करता हूँ और ब्रह्म लोक गोलोक में भी विचरण करता हूँ। अतः,––उसका अर्थ इस प्रकार हैं,—स्वर्ग शब्द से पदद्वय द्वारा भूर्लोक भुवर्लोक नाभि से स्वर्गलोक मस्तक से रचित हुए, यह लोकत्रय की स्थिति है, द्वितीयस्कन्ध के

एषः—आत्मलोकः, इति, सच ब्रह्मर्षिगणसेवितः' ब्रह्माणि, मूर्त्तिमन्तो वेदाः, ऋषयः श्रीनारदादयः, गणाश्च, श्रीगरुड़विष्वक्-सेनादयः, तैःसेवितः। एवं नित्यश्रितानुक्त्वा तत्गमनाधिकारिण आह। तत्र ब्रह्मलोके उमया सह वर्त्तते इति सोमः शिवस्तस्य गतिः स्व धर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्, विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम् अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं, पदं यथाहं विबुधाः फलात्यये इति चतुर्थरुद्रगीतातः। सोमेति सुपां सुलुगित्यादिना षष्ठ्या लुक्छान्दसः। तत्र उत्तरत्रापि गतिरित्यस्यान्वयः। ज्योति र्ब्रह्म तदेकात्मा भावानां मुक्तानामित्यर्थः। नतु तादृशामपि सर्वेषां किन्तु महात्मनां महाशयानां मोक्षानादरतया भजतां श्रीसनकादितुल्यानामित्यर्थः। मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः। सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा

अनुसार स्वर्ग लोक से ब्रह्मलोक पर्य्यन्त पाँच लोकों की कल्पना है, उसके उपर ब्रह्मलोक है। ब्रह्मात्मक लोक ही ब्रह्मलोक है, सच्चिदा नन्दरूपता के कारण ब्रह्म भगवान् का धाम है। मस्तक के द्वारा सत्यलोक तो ब्रह्म लोक सनातन है, यह वर्णन द्वितीय स्कन्ध में है। इसकी टीका ब्रह्मलोक वैकुण्ठ नामक सनातन नित्य है, नतु सृज्य है, सृज्य तो प्रपञ्च के अन्तर्वर्त्ती है। श्रुति भी कहती है—यह ब्रह्म लोक, यह आत्मलोक है, वह ब्रह्मर्षिगण सेवित हैं। ब्रह्माणि मूर्त्तिमान् वेद समूह, ऋषिगण—श्रीनारद प्रभृति मुनिगण, गण—श्रीगरुड़ विष्वक्‌सेन प्रभृति हैं, उनसव के द्वारा सेवित हैं। इसप्रकार नित्याश्रितों का विवरण कहकर, वहाँपर जाने वाले का अधिकार कहते हैं। उस ब्रह्मलोक में उमा के साथ रहते हैं, वह सोम हैं, अर्थात् शिव हैं, उनकी गति है, साधक शतजन्म स्वधर्मनिष्ठ होने पर ब्रह्म लोक गमन करता है, उस के बाद मुझ को शिव को प्राप्त करता है, इस के पश्चात् वैष्णवगण भगवल्लोक को प्राप्त करते हैं, जिस प्रकार प्रलय होने से हमसब देवता भगवल्लोक को प्राप्त करते हैं। यह विवरण चतुर्थ स्कन्ध के रुद्रगीत में हैं। सोम शब्द से षष्ठी विभक्ति का लोप सुपांसु लुगिति छान्दस सूत्र से हुआ है। उस

कोटिष्वपि महामुने ।।" इतिषष्ठात् ।। योगिनामपि सर्वेषां मद्‌गते-नान्तरात्मना । श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मत: । इति गीताभ्यश्च । तेष्वेव महत्वपर्य्यवसानात् । तस्य ब्रह्मलोकस्योपरि गवां लोक: श्रीगोलोक इत्यर्थ: ।।

तञ्च गोलोकं साध्या: प्रापञ्चिकदेवानां प्रसाधनीयामूलरूपा नित्यतदीयदेवगणा: पालयन्ति दिक्‌पालतया वर्त्तन्ते, ते ह नाकं महिमानं सचन्तो यत्र पूर्वे साध्या: सन्ति देवा:, इति श्रुते: । तत्र पूर्वे ये च साध्या विश्वेदेवा: सनातना: । ते ह नाकं महिमान: सचन्त: शुभदर्शना:" ।। इति महावैकुण्ठ वर्णने पाद्मोत्तर खण्डाच्च । यद्वा, तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद् गोकुलेऽपि" इति श्री ब्रह्मस्तवानुसारेण तद्विधपरमभक्तानामपि साध्या: तादृशसिद्धि प्राप्तये प्रसाधनीया: श्रीगोपीप्रभृतयस्तं पालयन्ति । तदेवं सर्वोपरि

में उत्तरोत्तर गति होती है, इस प्रकार अन्वय है । ज्योति: ! शब्द से ब्रह्म का बोध होता है, उनमें एकात्मभावापन्न मुक्तगण की गति होती है, किन्तु सवमुक्तों की नहीं होती है, महात्मा महाशय गण की गति होती है, और जो मुक्त मुक्ति के प्रति अनादर कर श्रीभगवान् का भजन करते हैं, जैसी श्रीसनकादि हैं, उनकी गति होती है । सिद्ध मुक्त गणों में नारायण परायण प्रशान्तात्मा अति दुर्लभ हैं । यह षष्ठ स्कन्ध का कथन है । श्रीगीता में उक्त है, योगियों के मध्य में समर्पित आत्मा जो श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करता है, वह युक्ततम होता है, यह मेरा मत है । महत् शब्द का पर्यवसान उन सब में होता है । उस ब्रह्म लोक के उपरिभाग में जो लोक है, वह गोओं का लोक श्रीगोलोक है ।

उस गोलोक का पालन साध्यगण करते हैं, जो प्रापश्चिक देव गणों के मूलरूप होते हैं, वे सव नित्य श्रीकृष्ण के ही देवगण होते हैं, और वहाँ दिक्‌पालरूप में रहते हैं । श्रुति में भी अनुरूप शब्द से ही वर्णित है, तेहनाकं महिमान: सचन्तो यत्र पूर्वे साध्या: सन्ति-देवा: । तत्र पूर्वे येच साध्या विश्वे देवा: सनातना: । तेह नाकं

गतत्वेऽपि, हि प्रसिद्धो, स श्रीगोलोकः सर्वगतः श्रीनारायण इव प्रापञ्चिकाप्रापञ्चिक वस्तु व्यापकः। कैश्चित् क्रममुक्ति व्यवस्थया तथा प्राप्यमानोऽप्यसौ द्वितीयस्कन्धवर्णित कमलासन दृष्ट वैकुण्ठवत् श्रीव्रजवासिभिरत्रापि यस्माद् दृष्ट इति भावः। अतएव महान् भगवद्रूप एव, महान्तं विभुमात्मानम्" इति श्रुतेः। तत्र हेतुः, महाकाशः परमव्योमाख्यं ब्रह्म विशेषणलाभात्, आकाशस्तल्लिङ्गादिति न्यायसिद्धेश्च, तद्गतब्रह्माकारोदयानन्तरमेव वैकुण्ठप्राप्तेः, यथा अजामिलस्य तदेवमुपर्य्युपरि सर्वोपर्य्यपि विराजमाने तत्र श्रीगोलोके ऽपि तव गतिः, श्रीगोविन्दरूपेण क्रीड़ा वर्त्तत इत्यर्थः। अतएव सा गतिः साधारणी न भवति, किन्तु तपोमयी। तपोऽत्रानवच्छिन्नैश्वर्य्यम् सहस्रनामभाष्येऽपि, परमं यो महत्तपः" इत्यत्र तत्र व्याख्यातम्। स तपोऽतप्यत" इति परमेश्वरविषयक श्रुतेः। ऐश्वर्य्यं प्राकाशयदिति तत्रार्थः। अतएव ब्रह्मादिदुर्वितर्क्यत्वमाह यामिति

महिमानः सचन्तः शुभदर्शनाः।" पद्मोत्तर खण्ड के महावैकुण्ठ वर्णन में उक्त है। यद्वा, उस को मैं भूरि भाग्य समझुंगा, यदि मेरा जन्म इस वृन्दाटवी में नगण्य वृक्ष रूप में हो, गोकुल में हो, और गोकुल वासियों के चरणरेणु मुझे मिले। इस प्रकार ब्रह्मस्तव के अनुसार, उस प्रकार परम भक्त भी फल प्राप्ति के लिए उनके परिकर श्रीगोपगोपी प्रभृति की प्रसन्नता को चाहते हैं। वह गोलोक सर्वोपरिस्थित होने पर भी, यह प्रसिद्ध भी है, तथापि वह श्रीगोलोक सर्वगत श्रीनारायण के समान प्रापञ्चिक अप्रापञ्चिक वस्तु व्यापक है। क्रममुक्तिव्यवस्था में किसी को ब्रह्मलोक वैकुण्ठ लोक का दर्शन कराया जाता है, द्वितीय स्कन्ध में वर्णित ब्रह्माजी ने भी वैकुण्ठ लोक का दर्शन किया, उस प्रकार श्री व्रजवासियों ने भी ऐश्वर्य्य प्रधान धाम का दर्शन किया। अतएव वह धाम महान् है, भगवद्रूप है, महान्तं विभुमात्मानम्" शब्द से श्रुति भी कहती है, उस में हेतु है—महाकाश परव्योम, नामक ब्रह्म का विशेषण है, ब्रह्म सूत्र भी आकाशस्तल्लिङ्गात् है। अजामिलका भी तदगत

अधुना तस्य गोलोक इत्याख्या बीजमभिव्यञ्जयति गतिरिति । ब्राह्म्ये ब्रह्मलोकप्रापके, तपसि–श्रीविष्णुविषयकमनः प्रणिधाने युक्तानां यतचित्तानां तत्प्रेमभक्तानामपीत्यर्थः । "यस्य ज्ञानमयं तपः" इति श्रुतेः । ब्रह्मलोकः वैकुण्ठलोकः, पराप्रकृत्यतीता गवां ब्रजवासिमात्राणां, मोचयन् व्रजगवांदिनतापम्" इति दशमात् अत्रैव निघ्नतोपद्रवं गवामिति । स्वतस्तद्भावभावितानाञ्च साधना-वशादित्यर्थः, अतस्तद्भावस्य दुर्लभत्वात् दूरारोहा । तदेवं गोलोकं वर्णयित्वा तस्य गोकुलेन सहाभेदमाह–सत्विति ।

स तु स एव लीलोधृतो रक्षितः श्रीगोवर्द्धनोद्धरणेनेति,एवमेव

ब्रह्माकारोदय के अनन्तर ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हुई । अतः समस्त लोकों के उपर विराजमान धाम गोलोक में भी तुम्हारी गति–श्री–गोविन्द रूप में क्रीड़ा होती रहती है । वह क्रीड़ा साधारणी नहीं है, किन्तु तपोमयी है, तपः शब्द से अनवच्छिन्न ऐश्वर्य्य को जानना होगा । सहस्रनामभाष्य के परमं यो महत्तपः" इस स्थल में तपः शब्द का वैसा ही अर्थ किया गया है । सतपोऽतप्यत यह परमेश्वर विषयक श्रुति है, उस का अर्थ—ऐश्वर्य्य को प्रकट किए थे । अतएव ब्रह्मादि के लिए भी वह धाम दुर्वितर्क्य है । अधुना–गोलोक शब्द का अर्थ है । जिस मनसे ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है, उस प्रकार एकाग्र मन से श्रीविष्णु की आराधना करने पर संयतचित्त वाले को प्रेममयभक्त कहते हैं, लोक उस को जान सकते हैं । श्रुति भी कहतीहै यस्य ज्ञानमयं तपः' । ब्रह्मलोक–वैकुण्ठलोक, परा–प्रकृति से अतीता, गवां–ब्रजवासिमात्रों के क्लेश दूर करते हैं, श्रीदशम में कहा है—व्रज वासियों के विरह ताप को विदूरित करते हुए क्रीड़ा करते हैं । यहाँपर ही उक्त है, गोओं के उपद्रव को शान्त करने के लिए आपने क्रीड़ा की । उन सब की प्रीति स्वभाविकी है, उनके आनुगत्य से तद्भाव भावित होनेपर साधक में वह प्रीति होती है, उस को साधन प्राप्त कहते हैं । अतः वह भाव दुर्लभ होने से वह गति दुरा रोहा है, इस प्रकार गोलोक का वर्णन करने के पश्चात् उस के साथ

मोक्षधर्मे-श्रीनारायणीयोपाख्याने श्रीभगवद्वाक्यं—एवं वहुविधै रूपै श्चरामीह वसुन्धराम्। ब्रह्मलोकञ्च कौन्तेय गोलोकञ्च सनातनम्' इति। तथाच मृत्यञ्जय तन्त्रे--"एकदा सान्तरीक्षाच्च वैकुण्ठं स्वेच्छया भुवि। गोकुलत्वेन संस्थाप्य गोपीमयमहोत्सवा। भक्तिरूपा सतां भक्तिमुत्पादितवतीभृशम्॥ एवं नारदपञ्चरात्रे विजयाख्याने, तत् सर्वोपरि गोलोके तत्र लोकोपरि स्वयम्। विहरेत् परमानन्दी गोविन्दोऽतुलनायक: इति। तथा ऋक्षु चायमेव प्रदिष्ट: "तां वां वास्तून्युश्मसि गमध्ये, यत्र गावो भूरि श्रृङ्गा अयास:। तत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण:, परमं पदमवभाति भूरि" इति, व्याख्या-तञ्च तां तानि वां युवयो: कृष्णरामयो वस्तूनि लीलास्थानानि गमध्ये प्राप्तुं उश्मसि, कामयामहे, तानि किं विशिष्टानि? यत्र येषु भूरि श्रृङ्गचो गाव: वहुशुभलक्षणा इति वा। अयास: शुभा:, अय: शुभावहो विधिरित्यमर:। देवास इतिवत् जसन्तं पदम्। अत्र

गोकुल का जो अभेद है, उसे कहते हैं सतु इति॥

गोवर्द्धन पर्वत धारण के द्वारा उस की रक्षा आपने की। उक्त प्रकार कथन मोक्ष धर्मस्थ श्रीनारायणीयोपाख्यान में है, श्री भगवद् वाक्य इस प्रकार है,-इस प्रकार अनेक रूपों से पृथिवी में विचरण करता हूँ। हे कौन्तेय! ब्रह्मलोक गोलोक सनातन है, मृत्युञ्जय तन्त्र में उक्त है, एक समय स्वेच्छा से अन्तरीक्ष से वैकुण्ठ को गोकुल रूप में पृथिवी में स्थापन कर गोपीमय महोत्सव को सम्पन्न किया था, वह भक्तिरूप है, और सज्जनों को भक्ति प्रदाता है। इस प्रकार श्रीनारदपञ्चरात्र में विजयाख्यान है। सव धाम के उपर गोलोक है, उस में अतुल नायक परमानन्दी गोविन्द निरन्तर विहार करते हैं। श्रुति में भी उसका वर्णन है, तां वां वास्तुन्युश्मसिगमध्ये, यत्र गावो भूरिश्रृङ्गाअयास: तत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण: परमं पदमवभाति भूरि" इसकी व्याख्या, तां वे सव, वां-कृष्णराम के वास्तूनि, लीलास्थान समूह, गमध्ये प्राप्तुं उश्मसि, प्राप्त करना चाहता हूँ, वे सव किस प्रकार हैं, यह बड़ी

एवं ज्योतिर्मयो देवः सदानन्दंपरात्परः ।
आत्मारामस्य तस्यास्ति प्रकृत्या न समागमः ॥६॥

भूमौ तल्लोके वेदे च प्रसिद्धं श्रीगोलोकाख्यं--उरुगायस्य स्वयं भगवतः तच्चरणारविन्दस्य परमं प्रपञ्चातीतं पदं स्थानं भूरि बहुधा अव भातीत्याह--वेद इति, यजुःषु माध्यन्दिनीये स्तूयते धामान्युश्मसीति विष्णोः परमं पदं अवभातीति भूरीति चात्र प्रकारान्तरं पठन्ति । शेषंसमानम् ॥५॥

एवं ज्योतिर्मयः परात्परः सदानन्दं देवोवर्त्तते ।
तस्य आत्मारामस्य प्रकृत्या समागमः नास्ति ॥६॥

अथ मूलव्याख्यामनुसरामः । विराट् तदन्तर्यामिनोरभेद विवक्षया पुरुषसूक्तादावेकपुरुषत्वं यथा निरूपितं, तथा गोलोक तदधिष्ठात्रोरप्याह--एवमिति । देवो गोलोकस्तदधिष्ठातृ श्रीगोविन्दरूपः, सदानन्दमिति—तत् स्वरूपमित्यर्थः । नपुंसकत्वं—विज्ञान मानन्द ब्रह्म'' इति श्रुतेः । आत्मारामस्य अन्यनिरपेक्षस्य प्रकृत्या

श्रृङ्गवाली गैया हैं । भूरिशब्द धर्मिपर होने पर भूम शब्द से महिष्ठ का वोध होता है । किन्तु अनेक प्रकार का वोध नहीं होता है । यूथ की दृष्टि से उस प्रकार कहा गया है—शुभलक्षणा अनेक गो हैं, अयासः शुभा । अयः शुभावहो विधिरित्यमरः" देवास के समान जसन्त पद है, यहाँ भूमण्डल में वैकुण्ठ में वेद में प्रसिद्ध जो गोलोक है । वह उरुगाय स्वयं भगवान् के प्रपञ्चातीत स्थान अनेक प्रकार से प्रकाशित है । माध्यन्दिनीय में स्तुति है, श्रीविष्णु के धाम की कामना करता हूँ जो परम पद में अनेक प्रकार से विलसित है । प्रकारान्तर से पूर्वोक्त कथन ही है ॥५॥

अनन्तर मूल की व्याख्या करते हैं । श्रीगोलोक के अधिष्ठाता श्रीगोविन्द स्वरूप का वर्णन करते हैं, आप चैतन्य स्वरूप, विचित्र लीलारूप क्रीड़ाशील, सच्चिदानन्दविग्रह एवं परात्पर हैं. अर्थात् सर्वोपरि तत्त्व हैं, पुरुषसूक्त में जिसप्रकार विराड् एवं उस के

मायया रममाणस्य न वियोगस्तया सह ।
आत्मना रमया रेमे त्यक्तकालं सिसृक्षया ।
नियतिः सा रमा देवी तत्प्रिया तद्वशम्बदा ॥७॥

मायया न समागमः । यथोक्तं द्वितीये—न यत्र माया किमुतापरे हरे रनुव्रता यत्र सुरा सुरार्चिताः ॥६॥

अथ प्रपञ्चात्मन स्तदंशस्य पुरुषस्य तु न तादृशत्वमित्याह्—मायया रममाणस्य तस्य पुरुषस्य तया मायया सह सिसृक्षया त्यक्त कालं रेमे । अथच स आत्मना रमया रेमे, सा रमादेवी नियतिः, तत् प्रिया तद्वशम्बदा भवति ॥७॥

अन्तर्यामी के साथ अभेद कथन के उद्देश्य से जिस प्रकार एक पुरुष का निरूपण हुआ है, उस प्रकार गोलोक एवं उसके अधिष्ठातृ देवता का वर्णन एक रूप से करते हैं। देव शब्द का अर्थ गोलोक एवं उसके अधिष्ठातृ देवता श्रीगोविन्द हैं। समूह पद से ही उभय पक्ष में अर्थ प्रकाशित होता है। सदानन्दं सच्चिदानन्द स्वरूप है, नपुंसक लिङ्ग का प्रयोग-विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इस श्रुति के अनुसरण से हुआ है। आप आत्माराम हैं, अतः वहिरङ्गामाया के साथ उनका संसर्ग नहीं है, द्वितीय स्कन्ध में उक्त है, जहाँपर माया का प्रभाव नहीं है, समस्त तत्त्व ही श्रीहरि के अनुगत हैं ॥६॥

प्रपञ्चात्मा पुरुष, उनका अंश होनेपर भी लीला उस प्रकार नहीं है, उनके अंश पुरुष इस विश्व के अधिष्ठाता हैं, प्राकृत प्रलय होने पर भी उन में उनकालय नहीं होता है, जिन के अंश के अंश के अंश भागसे सृष्टि स्थिति प्रभृति होती रहती है, जीव के समान ईश्वर भी माया से लिप्त होकर अनीश्वर होगें ? उत्तर में कहते हैं। नहीं। माया के द्वारा वहिर्भाग में सेवित होते हैं। अभ्यन्तर में रमा अर्थात् स्वरूप शक्ति के द्वारा ही सेवित होते हैं, तृतीय के ब्रह्म स्तव से ज्ञात होता है कि—प्रपन्न वरद प्रभु आत्मशक्ति रमा नामक निज शक्ति से सेवित होते हैं। प्रथम स्कन्ध में अर्जुन

अथ प्रपञ्चात्मन स्तदंशस्य पुरुषस्य तु न तादृशत्वमित्याह— माययेति। प्राकृत प्रलयेऽपि तस्मिंस्तस्यालयात् यस्यांशांशांश भागेनेत्यादेः। ननु तर्हि जीववत्तल्लिप्तत्वेन अनीश्वरत्वं स्यात् ? तत्राह आत्मनेति। स तु आत्मना अन्तर्वृत्या तु रमया स्वरूप शक्त्यैव रेमे रतिं प्राप्नोति। वहिरेव मायया सेव्य इत्यर्थः। एष प्रपन्न वरदो रमयात्मशक्तया यद् यत् करिष्यति गृहीत गुणावतारः इति तृतीये ब्रह्मस्तवात्। अत्र मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्येस्थित, आत्मनीति प्रथमे श्रीमदर्ज्जुनवचनाद्। तर्हि तत् प्रेरणं विना कथं सृष्टि स्तत्राह। सिसृक्षया स्रष्टुमिच्छयात्यक्तः, सृष्ट्यर्थं प्रहितः कालः यस्मात् रमणात् तादृशं यथास्यात्तथा रेमे। प्रथमान्तपाठस्तु सुगमः तत् प्रभावरूपेण तेनैव सा सिध्यतीति भावः। "प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम्" कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्या-मधोक्षजः। पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्य्यवान्" इति च तृतीयात्॥

वाक्य से ज्ञात होता है, श्रीहरि, माया वश्य नहीं हैं, निज चित्शक्ति में विलास करते हैं, जीव मायावृत हैं, उनकी प्रेरणा के विना सृष्टि कैसे होगी ? कहते हैं,—जब सृष्टि करने की इच्छा होती है, तब सृष्टि के लिए काल को प्रेरण करते हैं, और प्रकृति को विक्षुब्ध करते हैं। यहाँ त्यक्त कालः पाठ ही सुगम है। काल के प्रभाव से ही प्रकृति सृष्टि कार्य में समर्था होती है। प्रभाव को ही पौरुष कहते हैं, जिस से भय-संसार होता है, कालशक्ति के द्वारा गुणमयी माया में अधोक्षज पुरुष रूप में सृष्टि के हेतु वीजवपन करते हैं। यह विवरण तृतीय स्कन्ध में है।

रमा कौन है ? कहते हैं नियति है, स्वयं भगवान् में विराज माना होने से नियति नाम है, वह स्वरूप भूता चिच्छक्ति है। देवी शब्द से द्योतमाना स्व प्रकाशरूपा अर्थ होता है। अतएव भगवान् की प्रिया एवं वशम्वदा है। द्वादश स्कन्ध ११-२० श्लोक में उक्त है, साक्षात् श्रीहरि की आत्मभूता अनपायिनी श्रीशक्ति है, टीका

तल्लिङ्गं भगवान् शम्भु ज्योतीरूपः सनातनः ।
या योनिः सा पराशक्तिः कामो वीजं महद्धरेः ॥८॥

ननु रमैव सा का तत्राह, नियतिरित्यर्द्धेन, नियम्यते स्वयं भगवत्येव नियता भवतीति नियतिः स्वरूपभूता तच्छक्तिः । देवी द्योतमाना स्वप्रकाशरूपा, इत्यर्थः । तदुक्तं द्वादशे ११ अः ।२० श्लोके । अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनोहरेः" इति । टीका च अनपायिनी हरेः शक्तिः । तत्र हेतुः, साक्षादात्मन इति स्वरूपस्य चिद्रूपत्वात्तस्यास्तदभेदादित्यर्थः । इत्येषा । अत्र साक्षात् शब्देन विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया" इत्याद्युक्तया माया नेति ध्वनितम् । तत्रानपायित्वं यथा विष्णुपुराणे–नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः श्री रनपायिनी, यथा सर्वगतो विष्णु स्तथैवेयं द्विजोत्तम " इति । एवं यथा जगत् स्वामी देवदेबोजनार्दनः । अवतारं करोत्येषा तथा श्रीस्तत् सहायिनी" इति च । देवत्वे देवदेहा सा मानुषत्वे च मानुषी, हरे र्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ।" इति च । हयशीर्ष पञ्चरात्रे–न विष्णुना विनादेवी न हरिः पद्मजां विना" इति ॥७॥

जगत् कारणशङ्कामपनोदयन्निर्णयति जोतिरूपः सनातनः

हरि की शक्ति अनपायिनी है, उस में हेतु है–साक्षात् आत्मा, स्वरूप चिद्रूप है । उन के साथ श्री का अभेद है । यहाँ साक्षात् शब्द से श्रीहरि की दृष्टि पथ में जो शक्ति रहने में लज्जिता होती है, वह नहीं है, वह तो माया शक्ति है । विष्णु पुराण में अनपायिनी शक्ति का विवरण इस प्रकार है, जगन्माता श्री नित्या अनपायिनी है, विष्णु जिस प्रकार सर्वगत है, वह भी उस प्रकार है, जगत् स्वामी देव देव जनार्दन जव जव अवतार लीला करते हैं, तव जनकी श्री भी अवतीर्ण होती है । देवता में देवता मानुष में मानुषी, श्रीहरि देह के अनुरूप निज देह को प्रकट करती है, हयशीर्षपञ्चरात्र में उक्त है-श्रीविष्णु को छोड़कर देवी नहीं रहती हैं, देवी को छोड़कर विष्णु भी नहीं रहते हैं । इति च ॥७॥

लिङ्गयोन्यात्मिकाजाता इमा माहेश्वरीः प्रजाः ॥८॥

भगवान् शम्भुः तल्लिङ्ग भवति । या योनिः सा अपरा प्रधानाख्या शक्ति र्भवति, हरेः तस्य पुरुषाख्य हर्य्यंशस्य कामोवीजं महद्भवति ।८

ननु कुत्रापि शिवशक्त्योः कारणता श्रूयते,तत्र विराड् वर्णनवत् कल्पनयेति तदङ्गविशेषत्वेनाह—तल्लिङ्गमिति । यस्यायुता युतांशांशे विश्वशक्तिरियं स्थिता इति विष्णुपुराणानुसारेण प्रपञ्चात्मनस्तस्य महाभगवदंशस्य स्वांशज्योतिराच्छन्नत्वादप्रकट-रूपस्य पुरुषस्य लिङ्गं लिङ्गस्थानीयः यः प्रपञ्चोत्पादकोऽंशः स एव शम्भुः (१) अन्यस्तु तदादिर्भाव विशेषत्वादेव शम्भुरुच्यते इत्यर्थः। वक्ष्यते च क्षीरं यथा दधिविकारविशेषयोगाद् संजायते नतु ततः पृथगस्ति हेतोरित्यादि । तथा तस्य वीर्य्यविधानस्थानरूपाया मायाया अप्यप्रकटरूपाया या योनि र्योनिस्थानीयोऽंशः, सैवापरा प्रधानाख्याशक्तिरिति पूर्ववत् । तत्र च हरे स्तस्य पुरुषाख्य हर्य्यंशस्य कामो भवति सृष्ट्यर्थं तद्दिदृक्षा जायते,-इत्यर्थः । ततश्च महदिति सजीवमहत्तत्त्वरूपं वीजमाहितं भवतीत्यर्थः । सोऽकामयतेति श्रुतेः, कालवृत्त्या तु मायायामिति तृतीयाच्च ॥८॥

(१) शं भावयति स्वद्वितीयव्यूहसङ्कर्षणात्मना प्रकृतिविलीनानां जीवानां तत्तदुपाधिसृष्ट्या इति शम्भुः-लघुभागवतामृत टीका ॥

माहेश्वरीः इमाः प्रजाः लिङ्गयोन्यात्मिकाः जाताः ।
अतः शिवशास्त्रमपि तत् विशेषाविवेकादेवस्वातन्त्र्येण प्रवर्त्तते

किसी किसी शास्त्र में शिव-शक्ति को जगत् कारण कहा गया है, उस का समाधान करते हैं, जिस प्रकार विराड् पुरुष की वर्णना में ब्रह्माण्ड को ही भगवान् का स्वरूप माना गया है । उस प्रकार श्रीभगवान् के अङ्ग विशेषरूप में शिवशक्ति को जगत् कारण कहा गया है ॥८॥

अतः शिवशास्त्र एवं तन्त्रादि शास्त्र का वर्णन जहांपर स्वतन्त्र रूप से हुआ है, वह वास्तविक नहीं है, पूर्वोक्त तात् पर्य्याव

शक्तिमान् पुरुषः सोऽयं लिङ्गरूपो महेश्वरः ।
तस्मिन्नाविरभूल्लिङ्गे महाविष्णुर्जगत्पतिः ॥१०॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रवाहु विश्वात्मा सहस्रांशः सहस्रसुः ॥११॥

वस्तुतस्तु पूर्वाभिप्रायत्वमेवेत्याह लिङ्गेत्यर्द्धेन । माहेश्वरीः माहेश्वर्य्यः ॥९॥

सोऽयं शक्तिमान् पुरुप लिङ्गरूपी महेश्वरो भवति।
तस्मिन् लिङ्गे जगत् पति महाविष्णुः आविरभूत् ॥१०॥

शक्तिमानित्यर्द्धेन तदेवानूद्य तस्मिन् पूर्वोक्ताप्रकटरूपस्य प्रकट रूपतयापुनरभिव्यक्तिरित्याह, तस्मिन्नित्यर्द्धेन । तस्माल्लिङ्गरूपी प्रपञ्चोत्पादकस्तदंशोऽपि शक्तिमान् पुरुषोच्यते । महेश्वरोऽप्युच्यते ततश्च तस्मिन् भूतसूक्ष्मपर्यन्ततां प्राप्ते लिङ्गे स्वयं तदंशी महाविष्णुराविरभूत्–प्रकटरूपेणाविर्भवति । यतो जगतां सर्वेषां परावरेषां जीवानां स एव पतिरिति ॥१०॥

सः सहस्रशीर्षा पुरुषः, सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

धारण से ही ही अर्थ करना आवश्यक है। प्रस्तुत श्लोक में उस का ही वर्णन है, पुरुष एवं प्रकृति से उत्पन्ना माहेश्वरी प्रजा है, अर्थात् महेश्वर, पुरुष, उनसे उत्पन्न है ॥९॥

पूर्वश्लोक का अभिप्राय को स्पष्ट करके इस श्लोक में कहते हैं। पहले अप्रकट रूप में जो थे, उनका ही प्रकट रूप में अभिव्यक्ति होती है, वह किस प्रकार हैं, कहते हैं, लिङ्ग रूपी, कारण रूपी प्रपञ्चोत्पादक व्यक्ति प्रथम पुरुष का अंश होने पर भी उनको शक्ति मान् पुरुष कहते हैं, महेश्वर भी कहते हैं। अतः उन भूत सूक्ष्म पर्य्यन्त प्राप्त लिङ्ग रूप कारण पुरुष में स्वयं तदंशी महाविष्णु आविर्भूत होते हैं, अर्थात् अप्रकट स्वरूप पुरुष में महाविष्णु प्रकट रूप में आविर्भूत होते हैं, आप समस्त जगत् के समस्तवस्तुओं के पूर्वोत्पन्न परोत्पन्न समस्त जीवों के ही पति हैं ॥१०॥

नारायणः स भगवानापस्तस्मात् सनातनात् ।
आविरासीत् कारणार्णोनिधिः सङ्कर्षणात्मकः ।
योगनिद्रागतस्तस्मिन् सहस्रांशः स्वयं महान् ॥१२॥

सहस्रबाहुः विश्वात्मा सहस्रांशः सहस्रसूर्भवति ॥११॥

तदेवं रूपं विवृणोति–सहस्रशीर्षेति । सहस्रमंशा अवतारा यस्य स सहस्रांशः । सहस्रं सूते सृजति यः स सहस्रसूः । सहस्रशब्दः सर्व्वत्रासंख्यतापरः । द्वितीये च तस्यैव रूपमिदमुक्तं, 'आद्योऽवतारः 'पुरुषः परस्ये'ति । अस्य टीकायां—'यस्य सहस्रशीर्षेत्युक्तो लीलाविग्रहः परस्य भूम्नः आद्योऽवतार' इति ॥११॥

सः भगवान् नारायणः अस्ति, तस्मात् सनातनात् आप एव कारणार्णोनिधिः आविरासीत्, सतु सङ्कर्षणात्मको भवति, तस्मिन् कारणार्णवे स्वयं महान् सहस्रांशः योगनिद्रागतः वर्त्तते ॥१२॥

अयमेव कारणार्णवशायीत्याह नारायण इति सार्द्धेन । ताः आप एव कारणार्णोनिधिराविरासीत्, सतु नारायणः सङ्कर्षणात्मकः इति; पूर्वं गोलोकावरणतया य श्चतुर्व्यूह मध्ये सङ्कर्षणः सम्मतः तस्यैवांशोऽयमित्यर्थः । तदुक्तं आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः तस्य ता अयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः'' इति ॥१२॥

उनके रूप को कहते हैं, उन विश्वात्मा पुरुष के सहस्र मस्तक सहस्र नयन, सहस्र चरण, सहस्र बाहु एवं सहस्र अवतार हैं । जिन के सहस्रांश कहते हैं, असंख्य सृजन सहस्र सृजन जो करते हैं, उन्हें सहस्रसू कहते हैं, सहस्र शब्द–सर्वत्र असंख्य अर्थ में प्रयुक्त होता है । द्वितीय स्कन्ध में उनके रूपका वर्णन है. पर पुरुष का आद्य अबतार इस की टीका में उक्त है, जिन को सहस्र शीर्ष रूप से कहा गया है, वह लीला विग्रह हैं, भूमा पर पुरुष के आद्य प्रथम अवतार हैं ॥११।

आप ही भगवान् कारणार्णवशायी नित्य स्वरूप नारायण हैं । उन से प्रथम जो कारण सलिल की उत्पत्ति हुई थी, उस का नाम ही कारण समुद्र है, वह नारायण,–सङ्कर्षणात्मक है, पहले

तद्रोमविलजालेषु बीजं सङ्कर्षणस्य च ।
हैमान्यण्डानि जातानि महाभूतावृतानितु ।।१३।।

तस्मादेष ब्रह्माण्डानामुत्पत्तिमाह–तस्य सङ्कर्षणस्य बीजं रोम विलजालेषु महाभूतावृतानि तु हैमानि अण्डानि जातानि ।।१३।

तस्मादेव ब्रह्माण्डानामुत्पत्तिमाह-तद्रोमेति । तदिति तस्येत्यर्थः तस्य सङ्कर्षणात्मकस्य यद्बीजं योनिशक्तावध्यस्तं तदेव पूर्वं भूत सूक्ष्मपर्यन्ततां प्राप्तं सत् पश्चात्तस्य लोमविलजालेषु विवरेषु अन्तर्भूतञ्च सन् हैमानि अण्डानि जातानि तानि चापञ्चीकृतांशैः महाभूतै र्जातानीत्यर्थः । तदुक्तं श्रीदशमे ब्रह्मणा, "क्वेदृग्विधा विगणिताण्डपराणुचर्य्या, वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम्" इति, तृतीये च, विकारैः सहितो युक्तै र्विशेषादिभिरावृतः । अण्ड कोषो बहिरयं पञ्चाशत् कोटि विस्तृतः । दशोत्तराधिकै र्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् । लक्ष्यन्तेऽन्तर्गतश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः इति" ।१३

गोलोक के आवरण के मध्य में चतुर्व्यूह का कथन है, उनमें से द्वितीय व्यूह सङ्कर्षण है, उनका अंश ही यह नारायण सहस्रांश स्वयं महान् नाम से ख्यात हैं। उनकी लीला को कहते हैं, आप योग-निद्रा में अवस्थित हैं, अर्थात् स्वरूपानन्द समाधि में अवस्थित हैं। कथित है-आप जलको नारा कहतेहैं – मनुष्य को आप कहते हैं, उस तत्त्व के आश्रय को नारायण कहते हैं ।।१२।।

कारणार्णवशायी से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं, उन सङ्कर्षणात्मक पुरुष का जो बीज अर्थात् पूर्वोक्त जीव सहित महत्तत्व प्रकृति में निहित था, वह पहले सूक्ष्म पर्य्यन्त अवस्था को प्राप्त कर पश्चात् उन के लोम विवर में अन्तर्भूत होकर स्वर्णमय अण्ड रूप में प्रकट हुआ, यह सव अण्ड अपञ्चीकृत अर्थात् परस्पर अमिश्रित महाभूत के द्वारा आवृत है। श्रीदशम में ब्रह्मा जी की उक्ति इस प्रकार है–आप की महिमा इस प्रकार है, रोम विवर में अगणित ब्रह्माण्ड के प्रवेश निर्गमन होते रहते हैं। तृतीय में कथित

प्रत्यण्डमेवमेकांशादेकांशाद्विशति स्वयम् ॥१४॥
बामाङ्गादसृजद्विष्णुं दक्षिणाङ्गात् प्रजापतिम् ।
ज्योतिर्लिङ्गमयं शम्भुं कूर्च्चदेशादवासृजत् ॥१५॥

सः स्वयम् एकांशाद् एकांशाद् प्रत्यण्डमेव विशति ॥१४॥

ततश्च तेषु ब्रह्माण्डेषु पृथक् पृथक् स्वरूपैः स्वरूपान्तरैः स एव प्रविवेशेत्याह-प्रत्यण्डमिति । एकांशादेकांशादेकेनैकेनांशेनेत्यर्थः ।१४।

सः वामाङ्गाद् विष्णुं असृजत्, दक्षिणाङ्गात् प्रजापतिं असृजत् । ज्योति लिङ्गमयं शम्भुं कूर्च्च देशात् भ्रुवोर्मध्यात् अवासृजत् ॥१५॥

पुनः किं चकार तत्राह-बामाङ्गादिति । विष्ण्वादय इमे सर्वेषामेव ब्रह्माण्डानां पालकादयः प्रति ब्रह्माण्डान्तः स्थितानां विष्ण्वादीनां स्वांशानां प्रयोक्तारः, यथा प्रतिब्रह्माण्डं तथा अधि ब्रह्माण्डमण्डलमभ्युपगन्तव्यमिति भावः । येषु प्रजापतिरयं हिरण्य गर्भरूप एव नतु वक्ष्यमाण चतुर्म्मुख रूप एव, सोऽयं तत्तदावरणगत

है—पञ्चाशत् कोटि बिस्तृत ब्रह्माण्ड समस्त पदार्थों के सहित ब्रह्माण्ड जहाँपर प्रविष्ट होते रहते हैं, इस कोटिश ब्रह्माण्ड परमाणुवत् आपके लोम विवर में दृष्ट होते रहते हैं ॥१३॥

अनन्तर आप उन उन ब्रह्माण्ड समूह में एक एक अंश के द्वारा पृथक् पृथक् स्वरूप द्वारा रूपान्तर से वहुरूप धारण कर प्रविष्ट होते है, एकांशादेकांशात् का अर्थ है, एक एक अंश के द्वारा ॥१४॥

श्रीमहाविष्णुने पुनः क्या किया, उसका विवरण कहते हैं। निज बामाङ्ग से विष्णु का सृजन किया, ब्रह्मा विष्णु महेश्वर समस्त ब्रह्माण्डों के पालक स्रष्टा संहारक हैं, प्रति ब्रह्माण्डस्थित विष्णु ब्रह्मा शिव रूप निजांश के प्रयोक्ता हैं जिस प्रकार। उस प्रकार अधि ब्रह्माण्ड मण्डल को जानना होगा इस में प्रजापति,-हिरण्यगर्भरूप हैं, किन्त वक्ष्यमान् चतुर्म्मुख ब्रह्मा यह तत्तदावरणगत तत्तद् देवताओं के स्रष्टा हैं, विष्णु एवं शम्भु उन उन ब्रह्माण्ड के

अहङ्कारात्मकं विश्वं तस्मादेतद्‌व्यजायत ॥१६॥
अथतैस्त्रिविधैर्वेशै र्लीलामुद्वहतः किल ।
योगनिद्रा भगवती तस्य श्रीरिव सङ्गता ॥१७॥

तत्तद् देवानां स्रष्टेति । विष्णुशम्भू अपि तत्तत् पालनसंहारकर्त्तारौ ज्ञेयौ । कूर्च्चदेशात् भ्रुवोर्मध्यात् । एषां जलावरण एव स्थानानि ज्ञेयानि ॥१५॥

एतद् विश्वं तस्मादेव अहङ्कारात्मकं व्यजायत वभूव ॥१६॥

तत्र शम्भोः कार्य्यान्तरमप्याह—अहङ्कारात्मकमित्यर्द्धेन । एतद्विश्वं तस्मादेवाहङ्कारात्मकं व्यजायत बभूव । विश्वस्या हङ्कारात्मकता तस्माज्जातेत्यर्थः सर्वाहङ्काराधिष्ठातृत्वात्तस्य ॥१६॥

अथ तैः त्रिविधैः वेशैः लीलां उद्वहतः, तस्य योगनिद्रा भगवती श्रीरिव सङ्गता किल ॥१७॥

ब्रह्माण्डप्रविष्टस्य तु तत्तद्रूपस्य लीलामाह, अथ तैरित्यादि । तैस्तत् सदृशैस्त्रिविधैः प्रतिब्रह्माण्डगतविष्ण्वादिभि र्वेशै रूपै र्लीलां ब्रह्माण्डान्तर्गतपालनादिरूपामुद्वहतो ब्रह्माण्डान्तर्गतपुरुषस्येति तामुद्वहति, तस्मिन्नित्यर्थः । योगनिद्रा,—पूर्वोक्तमहायोगनिद्रांशभूताभगवती स्वरूपानन्दसमाधिमयत्वादन्तर्भूतसर्वैश्वर्य्या सङ्गता श्रीरिवेति । तत्र, यथा श्रीरप्यंशेन सङ्गता तथा सापीत्यर्थः ॥१७॥

पालन कर्त्ता एवं संहार कर्त्ता हैं । कूर्च्चदेश का अर्थ है भ्रू द्वय के मध्य वर्त्ती स्थान से । इन सब के ब्रह्माण्ड समूह जल से परिवेष्टित है ॥१५॥

उन में से शम्भु का कार्यान्तर को कहते हैं । यह विश्व उन से ही अहङ्कारात्मकता, विश्व का अहङ्कार तत्त्व उन से ही उत्पन्न हुआ है, आप समग्र अहङ्कार के अधिष्ठाता हैं ॥१६॥

ब्रह्माण्ड प्रविष्ट ब्रह्मा विष्णु महेश्वर की लीला को कहते हैं । प्रति ब्रह्माण्ड गत उनके सदृश विष्णु ब्रह्मामहेश्वर रूप में ब्रह्माण्ड-

सिसृक्षायां ततो नाभेस्तस्य पद्मं विनिर्ययौ ।
तन्नालं हेमनलिनं ब्रह्मणो लोकमद्भुतम् ॥१८॥
तत्त्वानि पूर्वरूढ़ानि कारणानि परस्परम् ।
समवायाप्रयोगाच्च विभिन्नानि पृथक् पृथक् ।

ततः सिसृक्षायां तस्य नाभेः पद्मं विनिर्ययौ ।
तन्नालं हेमनलिनं ब्रह्मणः अद्भुतंलोकं अस्ति ॥१८॥

ततश्च सिसृक्षायामिति । नालं नालयुक्तं तद्धेमनलिनं ब्रह्मणो जन्मशयनयोः स्थानत्वात् लोकइत्यर्थः ॥१८

भगवान् आदिपुरुषः देवः चिच्छक्त्या सज्जमानः अथ पूर्वरूढ़ानि कारणानि तत्त्वानि परस्परम् समवायाप्रयोगाच्च विभिन्नानि मायया पृथक् पृथक् योजयन् योगनिद्रां अकल्पयत् स्वीकृतवानित्यर्थः ॥१६॥

तथा असंख्य जीवात्मकस्य समष्टिजीवस्य प्रबोधं वक्तुं पुनः

अन्तर्गत पालन सृजन संहार रूप लीला को जब करते रहते हैं, तब पूर्वोक्त महायोगनिद्रा की अंशभूता भगवती योगनिद्रा स्वरूपानन्द समाधिमय होने से अन्तर्भूतसमस्तऐश्वर्यसम्पन्ना देवी श्री के समान उन सब की अनुगता होती रहतीहै, जिस प्रकार सङ्कर्षणात्मक भगवान् नारायण के सहित श्री लक्ष्मी अंश से मिलित हैं, उस प्रकार महायोगनिद्रा की अंशभूता भगवती प्रति ब्रह्माण्डान्तर्गत पालनादि लीलाकारी विष्णु ब्रह्मा, रुद्र, स्वरूप के सहित अंश से मिलित रहती है ॥१७॥

अनन्तर उनकी विश्व सृजन करने की इच्छा होने से उनकी नाभि से नाल युक्त अद्भुत स्वर्णकमल निर्गत हुआ, वह ब्रह्मा के शयन एवं जन्मस्थान है ॥१८॥

उस प्रकार असंख्य जीवात्मकसमष्टि जीव का प्रबोधन को कहने के लिए पुनः तृतीय स्कन्धोक्तानुसारिणी कारणार्णवशायी की सृष्टि प्रक्रिया को सुस्पष्ट रूप से कहतेहैं । तत्त्वानि तीन श्लोकोंके द्वारा

चिच्छक्त्या सज्जमानोऽथ भगवानादिपूरुषः ।
योजयन् मायया देवो योगनिद्रामकल्पयत् ॥१९॥
योजयित्वाथ तान्येव प्रविवेश स्वयं गुहाम् ।
गुहां प्रविष्टे तस्मिंस्तु जीवात्मा प्रतिबुध्यते ॥२०॥
स नित्यो नित्यसम्बन्धः प्रकृतिश्च परैव सा ॥२१॥

कारणार्णोनिधिशायिनस्तृतीयस्कन्धोक्तानुसारिणीं सृष्टिप्रक्रियां विवृत्याह--तत्त्वानीति त्रयेण । तत्र द्वयमाह, मायया स्वशक्त्या परस्परं तत्त्वानि योजयन्निति, योजनानन्तरमेव निरीहतया योगनिद्रामेव स्वीकृतवानित्यर्थः ॥१९॥

अथ तानि एव योजयित्वा स्वयं गुहां प्रविवेश । तु गुहां प्रविष्टे तस्मिन् जीवात्मा प्रतिबुध्यते ॥२०॥

अथ तृतीयमाह—योजयित्वेति । योजयित्वा तद् योजना योगनिद्रयोरन्तराले इत्यर्थः । गुहां विराड् विग्रहं, प्रतिबुध्यते–प्रलयस्वापाज्जागर्त्ति ।२०॥

सः जीवात्मा, नित्यः । भगवता समं नित्यसम्बन्धः, प्रकृतिः

उस में से श्लोक को कहते हैं, निज शक्ति रूपी माया द्वारा परस्पर तत्त्वों को योजित कर, योजनानन्तर निरीह रूप से योगनिद्रा को स्वीकार किए । अर्थात् कारणार्णवशायी लीलामय आदि पुरुष भगवान् चिच्छक्ति के साथ आसक्त होकर पूर्वोक्त कारण रूप पृथिवादि तत्त्व समूह जो समवेत नहीं थे विभिन्न रूप में थे, उसे निज माया शक्ति के द्वारा परस्पर योजना करतः निश्चेष्ट होकर योगनिद्रा को अङ्गीकार किए ॥१९॥

अनन्तर तृतीय लोक को कहते हैं । योजना करने के पश्चात् अर्थात् तत्त्वों की योजना एवं योगनिद्रा का अङ्गीकार इन दोनों के मध्य समय में गुहा नामक विराड् शरीर में प्रविष्ट हुए, अनन्तर जीवात्मा प्रलय कालीन निद्रा को छोड़कर जग गई ॥२०॥

एवं सर्वात्मसम्बन्धं नाभ्यां पद्मं हरेरभूत् ।
तत्र ब्रह्माभवद्भूयश्चतुर्वेदी चतुर्म्मुखः ॥२२॥

च सा परा एव ॥२१॥

जीवस्य स्वाभाविकी स्थितिमाह–स नित्य इत्यर्द्धेनेति, नित्यो ऽनाद्यनन्तकालभावी नित्यसम्बन्धो भगवतासह समवायो यस्य सः। सूर्य्येण तद्रश्मिजालस्येवेति भावः। यत्तटस्थन्तु चिद्रूपं स्वसम्वेद्याद्विनिर्गतम्। रञ्जितं गुणा रागेण स जीव इति कथ्यते ॥ इति नारद पञ्चरात्रात्। ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' इति श्रीगीताभ्यश्च। अतएव प्रकृतिः साक्षिरूपेण स्वरूपस्थित एव। स्वप्रतिविम्बरूपेण प्रमातृरूपेण प्रकृतिमिव प्राप्तश्चेत्यर्थः। प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतामिति श्रीगीतास्वेव। द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" इति श्रुतिश्च नित्यस्वरूपं दर्शयति ॥२१॥

एवं हरेः नाभ्यां सर्वात्मसम्बन्धं पद्मं अभूत् ।
तत्र भूयः, चतुर्वेदी चतुर्म्मुखः ब्रह्मा अभवद् ॥२२॥

जीव की स्वाभाविकी स्थिति को कहते हैं, स नित्यः" इस अर्द्ध श्लोक द्वारा। वह जीवात्मा नित्य है, अर्थात् अनादि अनन्त काल स्थायी है, भगवान् के साथ जीव का नित्य सम्बन्ध समवाय सम्बन्ध है। जिस प्रकार सूर्य के साथ सूर्य्य रश्मि का नित्य सम्बन्ध है, उस प्रकार श्रीभगवान् के साथ जीव का नित्य सम्बन्ध है। नारद पञ्च रात्र में उक्त है, जो तटस्थ शक्ति एवं चिद्रूप है, एवं स्वसम्वेद्य पदार्थ से निर्गत है, पश्चात् प्रकृति के गुण राग से रञ्जित है। उस को जीव कहते हैं, श्रीगीता में कथित है, मेरा ही अंश जीव है, वह जीवभूतः सनातन है, अतएव प्रकृति साक्षिरूप में स्वरूप में स्थित होता है। स्वप्रतिविम्ब रूप से प्रमातृ रूप होता है, और प्रकृति के समान ही वह प्रतिभात होता है, श्रीगीता में उक्त है, जीव को परा प्रकृति रूप से जानना। दो सुपर्ण सखा रूप में एकत्र अवस्थानकारी है, श्रुति नित्य स्वरूप को कहती है ॥२१॥

स जातो भगवच्छक्त्या तत् कालं किलचोदितः ।
सिसृक्षायां मतिं चक्रे पूर्वसंस्कारसंस्कृताम् ॥
ददर्श केवलं ध्वान्तं नान्यत् किमपि सर्वतः ॥२३॥
उवाच पुरत स्तस्मै तस्य दिव्या सरस्वती ।
कामकृष्णाय गोविन्द ङे गोपीजन इत्यपि ।
वल्लभाय प्रिया वह्नेरयं ते दास्यति प्रियम् ॥२४॥

अथ तस्य समष्टिजीवाष्ठानं गुहाप्रविष्टात् पुरुषादुद्भूत मित्याह एवमिति । ततः समष्टि देहाभिमानिन स्तस्य हिरण्य गर्भ ब्रह्मण स्तस्मात् भोगविग्रहोत्पत्तिमाह–तत्रेति ॥२२॥

सः जातः, भगवच्छक्त्या तत् कालं चोदितः किल, पूर्व संस्कारसंस्कृताम् सिसृक्षायां मतिं चक्रे" सर्वतः केवलं ध्यान्तं ददर्श, किमपि अन्यत् न ॥२३॥

अथ तस्य चतुर्मुखस्य चेष्टामाह–स जात इतिसार्द्धेन स्पष्टम् २३

तस्य पुरतः दिव्या सरस्वती उवाच, काम कृष्णाय गोविन्द ङे गोपीजन इति अपि वल्लभाय वह्नेः प्रिया अयं ते प्रियम्

अनन्तर गुहा प्रविष्ट पुरुष से समष्टि जीवाधिष्ठान उद्भूत हुआ, अनन्तर समष्टि देहाभिमानी हिरण्य गर्भ ब्रह्मा का भोग विग्रह की उत्पत्ति हुई । इस प्रकार श्रीहरि के नाभिदेश में समस्त आत्मा के साथ सम्वन्ध विशिष्ट पद्म आविर्भूत हुआ, उस कमल में पुनर्वार हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का भोग विग्रह स्वरूप चतुर्वेद कर्त्ता चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई ॥२२॥

अनन्तर उन चतुर्म्मुख ब्रह्मा की चेष्टा को कहते हैं, सार्द्ध श्लोक के द्वारा, ब्रह्मा, जन्म ग्रहण करने के बाद भगवत् शक्ति से निमित्त प्रयत्न करने लगे । किन्तु उस समय आपने सर्वत्र अन्धकार को ही देखा । अपर कुछ भी दिखाई नहीं दिया ॥२३॥

अनन्तर पूर्व उपासना भाग्य लब्ध ब्रह्मा के प्रति भगवत् कृपा

तप त्वं तप एतेन तव सिद्धिर्भविष्यति ॥२५॥
अथ तेपे स सुचिरं प्रीणन् गोविन्दमव्ययम् ।
श्वेतद्वीपपतिं कृष्णं गोलोकस्थं परात्परम् ।

दास्यति ॥२४॥

अथ तस्मिन् पूर्वोपासनाभाग्यलब्धां भगवत्कृपामाहोवाचेति सार्द्धेन; स्पष्टम् ॥३४॥

त्वं तप, तप, एतेन तव सिद्धिः भविष्यति ॥२५॥

एतदेव स्पर्शेषु यत् षोड़शमेकविंशमिति तृतीय स्कन्धानुसारेण योजयति तप त्वं इत्यर्द्धेन; स्पष्टम् ॥२५॥

अथ सः गोविन्दं अव्ययं प्रीणन् सुचिरं तेपे । कीदृशं तं, श्वेत

हुई, सार्द्ध श्लोक से उसका वर्णन करते हैं। उस समय ब्रह्मा के सामने दैववाणी हुई, उस से यह सूचित हुआ कि प्रथम कामवीज पश्चात् कृष्णाय पद, उसके वाद चतुर्थ्यन्त गोविन्द शब्द, तत् पश्चात् गोपीजन वल्लभाय, तदन्त में वह्नि प्रिया अर्थात् स्वाहा समन्वित अष्टादशाक्षर मन्त्र तुम्हारे प्रिय विधान करेगा ॥२४॥

इस मन्त्र द्वारा तपस्या करो, इस से सिद्धि होगी। उस का स्पष्टी करण कररहे हैं, तुम तपस्या करो, द्वितीय स्कन्ध के नवमाध्याय के षष्ठ श्लोक के द्वारा उसकी योजना कर रहे हैं।

स चिन्तयन् द्वयक्षरमेकदाम्भस्युपाश्रृणोद् द्विर्गदितं वचोविभुः ।
स्पर्शेषु यत् षोड़शमेकविंशं निष्किञ्चनानां नृप यद्धनं विदुः ॥

सृष्टि चिन्तयन् कदाचिद् द्वयक्षरं वचः अम्भसिउपाशृणोत् उप समीपे श्रुतवान् । ते अक्षरे दर्शयति । कादयो मावसानाः स्पर्शाः, तेषु यत् षोड़शं तकारः, यच्चैकविंशं पकारः । वचसो निर्द्देशार्थं तदर्थमाह ।

हे नृप ! निष्किञ्चनानां त्यक्त धनानां धनं यद्विदुः, येन तपोधनाः प्रसिद्धाः । तच्च द्विर्गदितं तप तपेति लोटो मध्यम पुरुषैक वचनं तस्य वीप्सा सादर विधिरूपां अशृणोदित्यर्थः ।२५। २।६।६भा०

प्रकृत्या गुणरूपिण्या रूपिण्या पर्य्युपासितम् ।
सहस्रदलसम्पन्ने कोटिकिञ्जल्कवृंहिते ।
भूमिश्चिन्तामणिस्तत्र कर्णिकारे महासने ।
समासीनं चिदानन्दं ज्योतीरूपं सनातनम् ।
शब्दब्रह्ममयं वेणुं वादयन्तं मुखाम्बुजे ।
विलासिनीगणवृतं स्वैः स्वैरंशैरभिष्टुतम् ॥२६॥

द्वीपपतिं कृष्णं गोलोकस्थं परात्परम्, प्रकृत्या गुण रूपिण्या रूपिण्या पर्य्युपासितम् सहस्रदलसम्पन्ने कोटिकिञ्जल्कवृंहिते भूमिश्चिन्तामणिः, तत्र महासने कर्णिकारे चिदानन्दं ज्योतीरूपं सनातनम् समासीनम् । मुखाम्बुजे शब्दब्रह्ममयं वेणुं वादयन्तं स्वैः स्वैरंशैरभिष्टुतम् विलासिनीगणवृतम् ॥२७॥

स तु तेन मन्त्रेण स्व कामनाविशेषानुसारात् सृष्टिकृत् शक्ति विशिष्टतया वक्ष्यमाणस्तवानुसारात् गोकुलाख्यपीठगततया श्री गोविन्दमुपासितवानित्याह, अथ तेपे इत्यादि चतुर्भिः । गुण रूपिण्या सत्त्वरजस्तमोगुणमय्या रूपिण्या मूर्त्तिमत्या पर्य्युपासितं परित स्तद् गोकुलाद् वहिस्थितयोपासितम्—ध्यानादिना अर्च्चितम् । माया परेत्यभिमुखे च विलज्जमाना'' इति । वलिमुद्वहन्त्यजया निमिषा'' इति च श्रीभागवतात् । अंशैस्तदावरणस्थैः परिकरैः ॥२६॥

श्रीब्रह्माजीने निज कामना के अनुसार सृष्टि कारिणीशक्ति युक्त दृष्टि से वक्ष्यमाण स्तवानुसार गोकुलाख्यपीठासीन श्रीगोविन्द देवकी उपासना की,उसका विवरण अथ तेपे चारश्लोकों से कहतेहैं। श्रीगोकुल के वाहर सत्त्व रजस्तमोगुणमयी मूर्त्तिमती शक्ति ध्यान से श्रीगोविन्द देवकी उपासना करती रहती, माया लज्जित होकर दृष्टि पथ के अन्तराल में रहती है. देवतागण वहिरङ्गा शक्ति के साथ श्रीगोविन्द देवकी उपासना के द्वारा उपासना करते रहते हैं। यह विवरण श्रीमद् भागवत में है। गोकुल के आवरणस्थ परिकर गण,

अथ वेणुनिनादस्य त्रयी मूर्त्तिमतीगतिः ।
स्फुरन्ती प्रविवेशाशु मुखाब्जानि स्वयम्भुवः ।
गायत्रीं गायतस्तस्मादधिगत्य सरोजजः ।
संस्कृतश्चादिगुरुणा द्विजतामगमत्ततः ॥२७॥

अथ वेणुनिनादस्य मूर्त्तिमती त्रयी गतिः स्फुरन्ती स्वयम्भुवः मुखाब्जानि आशु प्रविवेश। सरोजजः गायतः तस्मात् गायत्रीं अधिगत्य आदिगुरुणा संस्कृतः च ततः द्विजतां अगमत् ॥२७॥

तदेवं दीक्षातः परस्तादेव तस्य ध्रुवस्येव द्विजत्वसंस्कार स्तदाराधितात् तन्मन्त्राधिदेवाज्जातः इत्याह। अथ वेण्विति द्वयेन। त्रयीमूर्त्ति र्गायत्री, वेदमातृत्वात्। द्वितीय पद्ये तस्य एव व्यक्ति भावित्वाच्च। तन्मयी गतिः परिपाटी। मुखाब्जानि प्रविवेशेत्यष्ट कर्णैः प्रविवेशेत्यर्थः। आदि गुरुणा श्रीकृष्णेन ॥२७॥

जोकि उनके अंश रूप होते हैं, उपासना करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा श्वेत द्वीप, पति, परात् पर अव्यय गोलोकस्थ गोविन्दाख्य श्रीकृष्ण को प्रीति के निमित्त वहुकालयावत् तपस्या किए थे। बहिरङ्गाशक्ति भी गोलोक के बाहर रहकर ध्यान से उनकी उपासना करती है। चिन्तामणिमयभूमि विशिष्ट उस गोलोक में सहस्रदल सम्पन्न कोटि किञ्जल्क द्वारा परिशोभित कर्णिकार रूप महासन में–चिदानन्द मय ज्योति रूप, नित्य विग्रह, श्रीगोविन्द उपविष्टहैं, एवं वदनाम्बुज में शब्द ब्रह्म मय वेणु वादन कर रहें हैं। निज प्रेयसी वृन्द द्वारा परिवेष्टित हैं, गोलोक के आवरणस्थ निजपरिकर वृन्द उनकी स्तुति करते रहते हैं ॥२६॥

ध्रुव के समान ही ब्रह्मा का द्विजत्व संस्कार दीक्षा के पश्चात् हुआ, वह भी उन मन्त्राधिदेवता से ही हुआ। उसका विवरण "वेणु निनादस्य" श्लोक द्वय से कहते हैं। त्रयीमूर्त्ती गायत्री, वेद माता, द्वितीय पद्य में उस का सुस्पष्ट उल्लेख है। तन्मयीगति– अर्थात् परिपाटी, मन्त्र मुखाब्ज समूह में प्रविष्ट हुए थे–अष्ट कर्ण

त्रय्या प्रबुद्धोऽथ विधिर्विज्ञातः तत्त्वसागरः।
तुष्टाव वेदसारेण स्तोत्रेणानेन केशवं ॥२८॥
चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष–
लक्षावृतेषु सुरभिरभिपालयन्तम्।

अथ त्रय्या प्रबुद्धः विज्ञाततत्त्वसागरः विधिः।
अनेन वेदसारेण स्तोत्रेण केशवं तुष्टाव ॥२८॥

ततश्च त्रयीमपि तस्मात् प्राप्य तमेव तुष्टावेत्याह–त्रय्येति। केशानंशून् वयति विस्तारयतीति केशवस्तम्। अंशवो ये प्रकाशन्ते मम ते केशसंज्ञिताः। सर्वज्ञाः केशवं तस्माद् मामाहु र्मुनिसत्तमाः इति सहस्रनामभाष्योत्थापितकेशवनिरुक्तौ भारतवचनात् ॥२८॥

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानम् कल्पवृक्षलक्षावृतेषु सुरभिरभिपालयन्तम् तं आदिपुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥२९॥

स्तुतिमाह चिन्तामणीत्यादिभिः। तत्र गोलोकेऽस्मिन्मन्त्र भेदेन तदेक देशेषु बृहद्ध्यानमयादिष्वेकस्यापि मन्त्रस्य रासमयादिषु

के द्वारा, जानना होगा। आदि गुरु श्रीकृष्ण के द्वारा संस्कृत हुए थे। इस प्रकार कमलयोनि ब्रह्मा आदि गुरु श्रीकृष्ण के निकट से गायत्री मन्त्र द्वारा संस्कृत होकर द्विजत्व प्राप्त किए थे ॥२७॥

अनन्तर त्रयी भी आदि गुरु श्रीकृष्ण से प्राप्त कर ब्रह्माजीने श्रीकृष्ण की ही स्तुति की। त्रय्येति श्लोक से उसे कहते हैं। केशव शब्द का अर्थ है—केश-अंशु समूह का जो विस्तार कहते हैं, वह केशव है, अंश–शक्ति समूह का प्रकाश होने से ही मेरी केशव संज्ञा हुई है। सर्वज्ञ मुनि सत्तमगण तज्जन्य मुझ को केशव कहते हैं। विष्णु सहस्रनाम भाष्य में उत्थापित केशवनाम निरुक्ति में भारत का वचन उस प्रकार है ॥२८॥

स्तुति को कहते हैं, चिन्तामणि प्रभृति श्लोकों के द्वारा, इस गोलोक में मन्त्रभेद से गोलोक के एक देश में बृहद् ध्यान मयादि में

लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानम्—
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२९॥
वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षम् ।
वर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दराङ्गम् ।

च पीठेषु सत्स्वपिमध्यस्थत्वेन मुख्यतया प्रथमं गोलोकाख्यपीठ-निवासयोग्यलीलया स्तौति—चिन्तामणीत्येकेन । अभि सर्वतोभावेन वननयन, चारण, गोस्थानानयन, सम्भालनप्रकारेण पालयन्तं सस्नेहं रक्षन्तं । कदाचिद्रहसि तु वैलक्षण्यमित्याह लक्ष्मीति लक्ष्म्योऽत्र गोपसुन्दर्य्य एवेति व्याख्यातमेव ॥२९॥

वेणुं क्वणन्तम्, अरविन्ददलायताक्षम्, वर्हावतंसम्, असिताम्बुदसुन्दराङ्गम्, कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभम् तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥३०॥

एवं एकही मन्त्रका रासमयादिमय निवास स्थान रूप योगपीठ होने पर भी मध्यवर्त्ती मुख्य पीठ का ही वर्णन गोलोक नामक पीठ में निवास योग्य लीला के द्वारा स्तव करते हुये करते हैं. "चिन्तामणि" एक श्लोक के द्वारा। अति सर्वतोभाव से वन नयन चारण गोस्थानानयन सम्भालन प्रकार द्वारा पालन करते हैं, स्नेह पूर्वक रक्षा करते हैं। कभी एकान्त में विलक्षण लीला भी करते हैं, उन को कहते हैं, लक्षलक्ष कल्प वृक्ष के द्वारा समावृत चिन्तामणिमय मन्दिर में अनन्त व्रजसुन्दरीगण के द्वारा ससम्भ्रम से सेवित उन आदि पुरुष गोविन्द का में भजन करता हूँ। लक्ष्मी शब्द से यहाँपर गोपसुन्दरी गण को ही जानना होगा,उस प्रकार ही व्याख्या हुई है।२९

सहज कथा ही गान, गमन ही नाट्य, वंशी ही प्रियसखी रूप आचरण का वर्णन अग्रिम ग्रन्थ में करेंगे, उस रीति से चिन्तामणि मय भवनगत गोलोकीय विलक्षण पीठगत लीला का वर्णन करने के पश्चात् एक स्थान में अनुष्ठित कथा गानादि रहित बृहद्ध्यानादि की रीति से द्वितीय पीठगत लीला का वर्णन करते हैं। वेणु श्लोक द्वय

कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभम् ।
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३०॥
आलोलचन्द्रकलसद्वनमाल्यवंशी–
रत्नाङ्गदं प्रणयकेलिकलाविलासम् ।
श्यामं त्रिभङ्गललितं नियतप्रकाशम् ।
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३१॥

तदेवं चिन्तामणि प्रकरसद्ममयीं 'कथागानं नाट्यं गमनमपीति वक्ष्यमाणानुसारेण गोलोकाख्यविलक्षणपीठगतां लीलामुक्त्वा एक-स्थानस्थितिकां कथा गानादिरहितां बृहद्धयानादिदृष्टां द्वितीयपीठ-गतां लीलामाह वेणुमिति द्वयेन। वेणुमिति तत्र स्पष्टम् ॥३०॥

आलोलचन्द्रकलसद्वनमाल्यवंशीरत्नाङ्गदं प्रणयकेलिकला विलासं, श्यामं, त्रिभङ्गललितं नियतप्रकाशं तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥३१॥

आलोलेत्यादि। प्रणय पूर्वको यः केलि परिहास स्तत्र या वैदग्धी सैव विलासो यस्य तं, द्रवकेलिपरीहासा इत्यमरः ॥३१॥

से ॥३०॥ जो सुमधुरस्वर से वेणु वादन करते हैं, जिन के नयन युगल पद्म पत्र के समान विस्तृत, मस्तक में मयूर पुच्छशोभित चूड़ा नवजलधर सदृश सुन्दरअङ्गकान्ति, कोटि कन्दर्प की रमणीयता तिरस्कारिणी अङ्गकी विशेषशोभा है, मैं उन आदि पुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ ॥३०॥

प्रणय पूर्वक जो केलि–अर्थात् परिहासमयवचन, उस में जो कला–वैदग्धी, पाण्डित्य, वह ही विलास है जिनका, उनका भजन मैं करता हूँ। अमरकोषकार कहते हैं, द्रव केलिपरिहास। जिनके चूड़ास्थित मयूरपुच्छ मृदुमलयानिल से ईषत् कम्पित है, वनमाला वंशी, रत्नालङ्कारसमूह विशेषरूप से शोभित हैं, जो प्रीति रस परिपूरित परिहास चातुरी प्रकट परायण है, श्यामसुन्दर, त्रिभङ्ग

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति ।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३२॥

आनन्द चिन्मय सदुज्ज्वलविग्रहस्य यस्य अङ्गानि सकलेन्द्रिय वृत्तिमन्ति, पश्यन्ति, पान्ति, कलयन्ति, चिरंजगन्ति, तं आदिपुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥३२॥

तदेवं लीलाद्वयमुक्त्वा परमाचिन्त्यशक्त्यावैभवविशेषानाह- अङ्गानीति चतुर्भिः। तत्र श्रीविग्रहस्य अङ्गानि, हस्तोऽपि द्रष्टुं शक्नोति,चक्षुरपि पालयितुं पारयति,तथा अन्यदन्यदप्यङ्गमन्यदन्यत् कलयितुं प्रभवतीति । एवमेवोक्तं,— सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखमित्यादि । जगन्तीति, लीलापरिकरेषु तत्तदङ्गं यथास्वमेव व्यवहरतीति भावः। तत्र च तस्य विग्रहस्य वैलक्षण्यमेव हेतु रित्याह आनन्देति ॥३२॥

ललित, एवं सतत प्रकाशमान है, मैं उन आदि पुरुष श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ ॥३१॥

लीलाद्वय कथन के पश्चात् परमाचिन्त्य शक्ति द्वारा विशेष वैभव का वर्णन करते हैं, अङ्गानीति चारश्लोकों से । उन श्रीविग्रह के अङ्ग समूह, इस प्रकार होते हैं। हस्त भी देख सकते हैं, चक्षु भी पालन करने में समर्थ है। इस प्रकार अन्य अन्य अङ्ग भी अन्य अन्य कार्य करने में समर्थ हैं। इस लिए कहा गया है, सर्वतः पाणि पाद, सर्वतः नयन, मस्तक मुख इत्यादि । जगन्तीति" शब्द से प्रतीत होता है कि–लीला परिकरों में तो उन उन अङ्गों से उन उन कार्य को यथावत् करते हैं, व्यवहार में वैषम्य नहीं होता है। इस के प्रति कारण निर्देश करते हैं, श्रीविग्रह ही विलक्षण है, उनके श्रीविग्रह आनन्द चिन्मय, परमोज्ज्वल है, प्रकृति गन्धास्पृष्ट है ॥३२॥

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनञ्च।
वेदेषुदुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३३॥

वैलक्षण्यं व्यनक्ति अद्वैतं, अच्युतं अनादि, अनन्तरूपं आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च, वेदेषु दुर्लभं, आत्मभक्तौ अदुर्लभं तं आदिपुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥३३॥

वैलक्षण्यमेव पुष्णाति—अद्वैतमिति त्रिभिः। अद्वैतं पृथिव्यामयमद्वैतो राजेतिवदतुल्यमित्यर्थः। विस्मापनं स्वस्य च" तृतीयस्थस्योद्धववाक्यात्। अच्युतं—न च्यवन्ते हि यद् भक्ताः महत्यां प्रलयापदि। अतोऽच्युतोऽखिले लोके स एकः सर्वगोऽव्ययः" इति काशीखण्डवचनात्, कंसो वताद्याकृतमेत्यनुग्रहं, द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः। कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन् यन्नखमण्डलत्विषा। यदर्च्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च" इत्यादि दशमस्थाक्रूरवाक्यात्। या वै श्रियार्च्चितमजादिभिराप्तकामै र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्। कृष्णस्य तद्भगवतः प्रपदारविन्दं

विलक्षणा का पोषण करने के लिए कहते हैं,—अद्वैतमिति तीन श्लोकों से।—अद्वैत शब्द से अतुलनीय जानना होगा, जिस पृथिवी में यह अद्वैत राजा है, कहने से वोध होता है, तृतीय स्कन्धस्थ उद्धव के वाक्य से वोध होता है कि आप स्वयं की सुभगता को देखकर स्वयं विस्मित होते थे। अच्युत शब्द का अर्थ है, जिन के भक्तों का पतन महत् प्रलय एवं विपत्ति से नहीं होताहै. एतन्निबन्धन अखिल लोक में एक सर्वग अव्यय को अच्युत कहते हैं, यह काशी खण्ड का विवरण है। अक्रूर ने कहा था, कंस ने आज मुझपर महान् अनुग्रह किया, इस से मैं श्रीहरि के चरण दर्शन कर सकूँगा, जिन के अवतार ग्रहण से नख कान्ति से पूर्वज मुनिगण तम को पार कर चूके थे। जिन चरणार विन्दों का अर्चन–ब्रह्म शिव देवगण

न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्। इति श्रीमदुद्धव वाक्यात्। दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्" इत्युक्त्वा, नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः कृष्णञ्च तत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः " इति श्रीशुकवाक्याच्च। अनादि मित्यादित्रयं यथैकादशसांख्यकथने, कालोमायामये जीव" इत्यादौ महाप्रलये सर्वविशिष्टत्वेन ब्रह्मोपदिश्य तदापि तस्य द्रष्टृत्वं स्वयं भगवान् स्वस्मिन्नाह" एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः। प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया "इति" पुराण पुरुषं-एक स्त्वमात्मा पुरुषः पुराण इति ब्रह्म वाक्यात्,'गूढ़ः पुराण पुरुषोवनचित्र माल्यः" इति माथुर वाक्याच्च। तथापि नवयौवनं—पुरापि नवः पुराण इति निरुक्तेः, गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्यरूपम्" इत्यादौ। अनुसवाभिनवं इति दशमात्,। यस्याननं मकर कुण्डलादि नित्योत्सवमिति नवमात्। सत्यं शौचम् इत्यादौ" सोभग-कान्त्यादीन् पठित्वा "एतेचान्येच भगवन्नित्या यत्र महागुणाः प्रार्थ्या

लक्ष्मी प्रभृति भी करते रहते हैं। आप्तकाम ब्रह्मादि देवगण, स्वयं लक्ष्मी, योगेश्वरगण, जिन चरणारविन्द की अर्च्चना करते रहते हैं, गोपीयों ने रास गोष्ठी में उन कृष्ण के उन चरणारविन्दों को वक्षोज के द्वारा परिरम्भणकर ताप शान्त किया था, यह वाक्य उद्धव जी का है। गोपों को प्रकृत्यतीत निज लोकों का दर्शन उन्होंने करवाया। इस के बाद में नन्दादि गोपगण श्रीकृष्ण प्रति देवों की अभ्यर्थना को देखकर आनन्दित तथा सुविस्मित भी हुये थे। यह श्रीशुक वचन है। अनादि विशेषणत्रय का विवरण एकादशस्कन्ध के सांख्य कथन प्रकरण में है। कालो मायामये जीवः इत्यादि में महाप्रलय में सब विशेष रूप में अपने का परिचय प्रदान ब्रह्मा को किया, उसका भी द्रष्टा स्वयं भगवान् हैं, उन्होंने कहा—संशय ग्रन्थि भेदन कारी सांख्य विधिका कथन मैंने किया, प्रतिलोम अनुलोम द्वारा वर्णन मैंने किया है, कारण कार्य को मैं ही जानता हूँ। पुराण पुरुष-ब्रह्माजीने कहा है, आप ही पुराण पुरुष एक आत्मा हो। माथुर

महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित्" इति प्रथमात्" वृहद्-ध्यानादौ तथाश्रवणात्। गोपवेशमभ्राभं तरुणं कल्पद्रुमाश्रितम्' इति तापनीश्रुतौ; तद्ध्याने तरुणशब्दस्य "नवयौवन" एव शोभा विधानत्वेन तात्पर्य्यात्। वेदेषु दुर्ल्लभं—भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्" इति, अद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव" इति च श्रीदशमात्" अदुर्ल्लभमात्मभक्तौ—भक्त्याहमेकया ग्राह्यः' इत्येकादशात्। पूरेह भूमन्। इत्यादि श्रीदशमाच्च ॥३३॥

यद्वा ननु तस्यातुल्यत्वे किमिति स्वार्थः। कथम्वातुल्यत्वं निजभक्तेभ्यः आत्मनो देहस्यापि प्रदानात्। किम्वावशिष्यत इत्याह—अच्युतमिति। निजभक्तेभ्य आत्मप्रदानादिनापि न विद्यते च्युति र्यस्य, सदैव एकरसमित्यर्थः। तर्हि किं नारायणं स्तौषि, तस्यैवाच्युतत्वादनादेश्च, नेत्याह—अनादिमिति न विद्यते आदिर्यस्य यस्माद्वा सर्वेषां परम कारणं स्वयन्तु स्वप्रकाशं कारण

जनों का वाक्य भी इस प्रकार है—गूढ़ पुराण पुरुष वनचित्र माल्य तथापि नव यौवन है-पुरापि नव पुराण यह पुराण शब्द का अर्थ है। श्रीदशम में उक्त है-इन्होंने कौन सी तपस्या की श्रीकृष्ण के रूपका दर्शन इन्होंने किया, वह रूप निरन्तर अभिनव है। नवम में भी यस्याननं मकरकुण्डलादि-नित्योत्सव रूप में कहा गया है, प्रथम स्कन्ध में सत्य शौच सौभग कान्ति प्रभृति का कथन के पश्चात् समस्त महद् गुणों का आकर रूप में श्रीकृष्ण को कहा है। वृहद्धानादि में भी उस प्रकार वर्णन है। तापनी श्रुति में वर्णित है-गोपवेश अभ्राभ तरुण कल्पद्रूमाश्रित। उनके ध्यान में तरुण शब्द का नव यौवन अर्थ है। शोभा का आकर कथन में तात्पर्य्य है—वेद में दुर्लभ-श्रुतियों के अन्वेषणीय मुकुन्द पदवी को प्राप्त किया। श्रीदशम में उक्त है—अद्यापि जिनकी पदरजः का अन्वेषण करना श्रुतियों का काम्य ही है। आत्मभक्त के निकट वह अदुर्लभ है, एकादश में वर्णित है–में एकमात्र भक्ति से ही लभ्य हूँ। श्रीदशम में भी श्रीब्रह्मा जीने कहा--हे भूमन्! पूर्व काल में भी भक्ति के

शून्यमित्यर्थः। नन्वेकेन कथं सर्वेषां परिपालनं घटते इत्यत आह–अनन्तेति, अनन्तं रूपं यस्य, अथवा प्रपञ्चगतत्वेन नास्त्यन्तो यस्य, अथवा अनन्तस्य रूपं स्वरूपं यस्य, यस्मादेवांशेनानन्तादीनामुत्पत्तिः ननु नारायणादेवानन्तादि प्राकट्य प्रसिद्धिरित्याह आद्यं यस्य विलास रूपो नारायणस्तं। ननु ज्ञातं तस्यैव पुरुषाख्यानं, नेत्याह, पुराणेति यस्य विलास वपुः पुरुषाख्यस्तं नन्वायातं तस्य वृद्धत्वमित्याह–नवः यौवनमिति, कैशोरमित्यर्थः। 'च' कारात् य एव पुरातनः, स एव किशोरवया इत्यनिर्वचनत्वं नित्यत्वञ्च। ननु वेदेषु नारायण एव गीयते इत्याह, वेदेष्विति, वेदैस्तत्त्वं ज्ञायते चेत् तेषु सुलभमित्यर्थः" भक्तिविना न ज्ञायते इत्याह अदुर्लभमिति ॥३३

द्वारा आप के चरणार विन्दों का लाभ भक्तवर्ग ने किया है ॥३३॥

यद्वा—उनका अतुल्य होने में स्वार्थ क्या है? अतुल्य भी कैसे हो हे सकते हैं? निज भक्त को निज देह प्रदान भी कर देते हैं। अवशेष ही क्या रह जाता है, अतः कहते हैं अच्युत,–निजभक्त को आत्म प्रदान से भी हानि नहीं होती है–सदा एकरस रहते हैं। तव क्या नारायण का स्तव करते हो? वह अच्युत है अनादि भी है, अनादि–जिनकी आदि नहीं है जिस से आदि और कोई नहीं है, सव के परम कारण हैं, स्वयं स्वप्रकाश हैं कारण शून्य हैं। एक से सवका परिपालन कैसे हो सकता हैं? कहते है–अनन्त हैं,–जिनके रूप अनन्त हैं, प्रपञ्चगत होने से जिन का अन्त नहीं है, अथवा जो अनन्त का स्वरूप है। जिन के अंश से ही अनन्तादि की उत्पत्ति है। प्रसिद्धि ही है कि–नारायण से अनन्तादि का प्राकट्य है। कहते हैं आद्य,-जिनका विलास रूप नारायण है। पुरुष नाम तो उनका ही है? नहीं, पुराण है, जिनका विलास वपुः पुरुष संज्ञक है। तव तो आप वृद्ध हैं?--नहीं, नव यौवन है, किशोर है। च कार से जो पुरातन है वह ही किशोर वयस के हैं, इस से अनिर्वचनीयत्व एवं नित्यत्व आप के हैं। वेद से तत्त्व ज्ञान होने से वह सुलभ है, भक्ति के विना उनका ज्ञान नहीं होता है-अतः वह अदुर्लभ हैं ॥३३॥

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसंप्रगम्यो
वायोरथापि मनसो मुनिपुङ्गवानां ।
सोऽप्यस्ति यत् प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वे
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३४॥

वायोः अथापि मुनिपुङ्गवानां मनसः कोटिशतवत्सर संप्रगम्यः सः पन्था तु यत् प्रपदसीम्न्यविचिन्ततत्त्वे अपि अस्ति तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥२४॥

पन्थास्त्विति, प्रपदसीम्नि चरणारविन्दयोरग्रे,—चित्रं वतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक् । गृहेषुद्वयष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् इति श्रीनारदोक्तेः । एकः वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन् वहुधा योऽवभाति" इति गोपालतापन्याम् । तत्र सिद्धान्तमाह–अविचिन्त्यतत्त्वे "इति, "आत्मश्वरोऽतवर्यसहस्रशक्तिः इति तृतीयात् । अचिन्त्य खलु ये भावा न तांस्तर्केन योजयेत् । प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम् । इति स्कान्दाद्भारताच्च, श्रुतेस्तुः शब्दमूलत्वात् " इति ब्रह्मसूत्रात् । अचिन्त्यो हि मणिमन्त्र महौषधीनां प्रभावः" इति भाष्ययुक्तेश्चेति भावः ॥३४॥

श्रीनारद जीके कथनानुसार–आश्चर्य यह है कि एक शरीर से ही युगपद् द्वयष्ट साहस्र गृह में परिणयोत्सव सम्पन्न किया । कृष्ण अद्वय है, वशी, सर्वग, ईड्य, एक होकर भी अनेक प्रकार से प्रति भात होते हैं, यह श्रीगोपाल तापनी का विवरण है, उस में सिद्धान्त कहते हैं । अविचिन्त्यतत्त्व है, आत्मेश्वरअतर्क्य सहस्र शक्ति है । यह वर्णन तृतीय स्कन्ध में है । अचिन्त्य भाव पदार्थ को मनुष्य मति से जानने की इच्छा न करे । जो प्रकृति से अतीत है, वह ही अचिन्त्य है । यह प्रमाण स्कन्द पुराण एवं भारत में है । ब्रह्म सूत्रका कथन है शास्त्र से तत्त्व को जानो । भाष्य की युक्ति है कि–मणि मन्त्र महौषधि का प्रभाव लोक बुद्धि का अगोचर होता है ॥३४॥

सर्वापेक्षा अधिक वेगशाली वायु एवं मुनिगण के समाहित मन

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिम्
यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः ।
अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३५॥

असौ एकः अपि जगदण्डकोटिं रचयितुं यच्छक्तिः अस्ति । यदन्तः जगदण्डचयाः वर्त्तन्ते, अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥३५॥

अचिन्त्यशक्तिमाह—एकोऽप्यसाविति । तावत् सर्वे वत्स पालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् । व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेय वाससः" इत्यारभ्य तैः वत्सपालादिभिरेवानन्तब्रह्माण्डसामग्रीयुत तत्तधिपुरुषाणां तेनाविर्भावनात् । जगदण्डचया' इति" नचान्त र्न वहिर्यस्य इत्यादेः अणोरणोयान्महतो महीयान्" इत्यादि श्रुतेः, योऽसौ सर्वेषु भूतेषु आविश्य भूतानि विदधाति स वो हि स्वामी भवति । योऽसौ सर्वभूतात्मा गोपालः, एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः" इत्यादि तापनीभ्यः ॥३५॥

है, शत कोटि वत्सर वह गमन कर भी जिनके चरणारविन्द की सीमा को स्पर्श कर नहीं पाता है, उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूँ ॥३४॥

अचिन्त्य शक्ति का वर्णन करते हैं, वह एक है तो भी ब्रह्माके देखते देखते ही वत्सपालगण घनश्याम वर्ण एवं पीत कौशेय वसन धारी हो गये । इस से आरम्भ कर वत्सपालादि के द्वारा ही अनन्त ब्रह्माण्ड की सामग्रीयुक्त उन उन के अधिपुरुषों का आविर्भाव कराया है, जगदण्ड निकर, को दिखाते हैं । जिनका अन्तर तथा बाहर नहीं हैं, जो अणु से भी अणु है, महत् से भी महान् है, जो समस्त भूतों में प्रविष्ट होकर भूतों का नियमन करते हैं, वह ही तुम्हारे स्वामी है, जो वह सर्वभूतात्मा गोपाल है एक है देव है, और समस्त भूतों में निगूढ़ रूप में रहते हैं । यह सब तापनीं से व्यक्त हुये हैं । जो मूर्त्त-

यद्भावभावितधियो मनुजास्तथैव
संप्राप्यरूपमहिमासनयानभूषाः ।
सूक्तैर्यमेव निगमप्रथितैः स्तुवन्ति ।
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।३६।।

मनुजाः यद्भावभावितधियः तथैव संप्राप्यरूप महिमासन यान भूषाः, निगमप्रथितैः सूक्तैः यमेव स्तुवन्ति तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ।।३६।।

अथ तस्य साधकचयेष्वपि भक्तेषु वदान्यत्वं वदन्नित्येषु कैमुत्यमाह–यद् भावेति । यथा समान गुणशीलवयोविलास वेशैश्चेत्यागमरीत्या नित्यतत्सङ्गिनां तत् साम्यं श्रूयते, तथैव संभाव्येत्यर्थः "वैरेण यं नृपतय शिशुपालशाल्वपौण्ड्रादयो गति–

स्वरूप में एक होकर भी अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड रचना करने की शक्ति सम्पन्न है, सुतरां ब्रह्माण्ड समूह सूक्ष्म रूपमें जिनके मध्यमें अवस्थित है, अथच सर्वव्यापक रूप में ब्रह्माण्ड के अभ्यन्तरस्थ सूक्ष्म परमाणु समूह में भी जिनकी व्याप्ति है, उन आदि पुरुष गोविन्द का में भजन करता हूँ ।।३५।।

अनन्तर साधक गणों के प्रति उनकी वदान्यता कथन के द्वारा नित्यपरिकरों के स्वभाव को कहते हैं, आगम में वर्णितहै, श्रीगोविन्द के परिकर गण उनके समान गुण शील वयस विलास वेश युक्त हैं, उस प्रकार साधक गण भावना के द्वारा गुणशीलवयस विलाश वेश के द्वारा समान होते हैं, एकादश स्कन्ध में वर्णित है–राजन्य वर्ग वैरता से तन्मयता को प्राप्त किये थे, जैसे शिशु पाल शाल्व पौण्ड्र प्रभृति थे, मनुष्य बुद्धि से गति विलास विलोकन प्रभृति में शयनासन प्रभृति में, श्रीकृष्ण में तन्मयता प्राप्त करते हैं, जो लोक प्रवल प्रेममयी तृष्णा से श्रीकृष्ण में तन्मयता को प्राप्त करते हैं, उनके लिए विशेष कहना क्या है ? जिन के नाम, रूप, गुण लीलादि चिन्तन कर मनुष्य गण के चित्त तन्मय हो जाता है, उस से उनसव की

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि
स्ताभिर्यएव निजरूपतया कलाभिः ॥
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३७॥

विलास विलोकनाद्यैः ध्यायन्त आकृतिधियः शायनासनादौ तद्भाव मापुरनुरक्तधियां पुनः किम्" इत्येकादशात् ॥३६॥

अखिलात्मभूतः यः आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिः निजरूपतया कलाभिः ताभिः एव गोलोक एव निवसति तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥३७॥

तत् प्रेयसीनां तु किं वक्तव्यं, यतः परम श्रीणां तासां साहित्येनैव तस्य तल्लोके वास इत्याह–आनन्देति अखिलानां गोलोकवासिनां अन्येषामपि प्रियवर्गानां आत्मभूतः परम प्रेष्ठतयात्मवदव्यभिचार्य्यपि ताभिरेव सह निवसतीति तासामतिशयित्वं दर्शितम् अत्र हेतुः– कलाभिः ह्लादिनीशक्तिवृत्तिरूपाभिः। अत्रापि वैशिष्टयमाह,--

सारूप्य मुक्ति भी होती है, उससे तुल्य रूप, महिमा, आसन, यान, भूषणादि का लाभ होता है. उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूँ ॥३६॥

उनकी प्रेयसीवर्ग की तन्मयता से जो एकात्मभाव है, उसका कहना ही क्या है, परम श्रीवर्ग के साहित्य से ही श्रीगोविन्द का गोलोक में अवस्थान सम्भव हुआ है। आनन्द शब्द से उस को कहते हैं, अखिल गोलोक वासियों के और अन्य प्रियवर्गो के आत्मभूत–परमप्रेष्ठता हेतु आत्मवत् नित्य प्रिय होनेपर भी उन सब प्रेयसीयों के साथ ही निवास करते हैं, इस से प्रीति में वे सब सर्वाधिक हैं, यह सूचित हुआ। इस में हेतु है—वे सब ह्लादिनी शक्ति की वृत्ति रूपा हैं। इस में भी वैशिष्ट्य है,–आनन्द चिन्मय जो रस, परम प्रेममय उज्ज्वल नामक रस, उस से प्रति भावित है, अर्थात् श्रीकृष्ण ने प्रीति के द्वारा जिन सब को विभोर किया था, उन प्रीतिसिक्त

आनन्द चिन्मयो यो रसः परमप्रेममय उज्ज्वल नामा तेन प्रति भाविताभिः—पूर्वं तावत्तासां तन्नाम्ना रसेन सोऽयं भावितो वासितो जातः,ततश्च,तेन याः प्रतिभाविता जाताः ताभिः सहेत्यर्थः, प्रतिशब्दा ल्लभ्यते। यथा प्रत्युपकृतः स' इत्युक्ते:, तस्य प्रागुपकारित्वमायाति तद्वत् तत्रापि निजरूपतया स्वदारत्वेनैव न तु प्रकट लीलावत् पर-दारत्वव्यवहारेणेत्यर्थः। परमलक्ष्मीणां तासां तत्परदारत्वा सम्भवादस्य स्वदारत्वमयरसस्य कौतुकावगुण्ठिततया समुत्कण्ठा पोषणार्थं प्रकट लीलायां माययैव तादृशत्वं व्यञ्जितमिति भावः। य एव इत्येव कारेण यत् प्रापञ्चिकप्रकटलीलायां तासु परदारता व्यवहारेण निवसति सोऽयं य एव तदप्रकट लीलास्पदे गोलोके निज रूपताव्यवहारेण निवसतीति व्यज्यते। तथाच व्याख्यातं गौतमीय तन्त्रे तदप्रकटनित्यलीलाशीलनदशार्णवव्याख्याने—अनेक जन्म सिद्धानां" इत्यादौ दर्शितमेव। गोलोक एवेत्येव कारेण सेयं लीलातु क्वापि नान्यत्र विद्यते इति प्रकाश्यते ॥३७॥

हृदयों से ही उन सबने प्रीति किया, उन सब के साथ ही आप निवास करते हैं, यह अर्थ प्रति शब्द से प्राप्त हुआ है, जिस प्रकार प्रत्युपकृतः सः" कहने से उसने पहले उपकार किया था, पश्चात् उस से उनको उपकार मिला है, अर्थ बोध होता है। उस प्रकार प्रतिभावितशब्द का अर्थ जानना होगा। उस में भी स्वदाररूप से ही व्यवहार करते हैं, किन्तु गोकुल में प्रकट होकर जिस प्रकार परदार रूप से व्यवहार किए थे उस प्रकार नहीं। प्रियावर्ग परम लक्ष्मीगण हैं, उन कृष्ण प्रियावर्ग का पर दारत्व होना सम्भव नहीं है, किन्तु निज पत्नी कौतुक से अवगुण्ठित होकर निज पति को विशेष उत्कण्ठित करती रहती है, उस प्रकार वृन्दावनीय प्रकट लीला में उत्कण्ठा वृद्धि के लिए योगमाया से ही उक्त परकीया सम्बन्ध की प्रतीति हुई थी। य एव, यहाँएवकार से यह अर्थ आता है, कि भौम वृन्दावन में प्रकट काल में परकीय परदार व्यवहार से वे सब रहती हैं, वह ही अप्रकट लीलास्पद रूप गोलोक में निज दार व्यवहार से निवास

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन ।
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३८॥

सन्तः प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन हृदयेषु यं अचिन्त्य गुणस्वरूपं श्यामसुन्दरं सदा एव विलोकयन्ति तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥३८॥

यद्यपि गोलोक एव निवसति तथापि प्रेमाञ्जनेति अचिन्त्य गुणस्वरूपमपि प्रेमाख्यं यदञ्जनच्छुरितवदुच्चैः प्रकाशमानं भक्ति रूप विलोचनं तेनेत्यर्थः। तेन प्रतिबिम्बवद् दूरादप्युदितं हृदये

करते हैं, यह ध्वनित हुआ। गौतमीय तन्त्र के अप्रकट नित्यलीला शीलन दशाक्षर मन्त्र की व्याख्या में कथित है, अनेक जन्म सिद्ध गोपीयों के पति है। गोलोक के वाद "एव" कार से यह अर्थ आता है, कि स्वदारत्व लीला केवल गोलोक में ही है, अन्यत्र गोकुल वृन्दावन में नहीं है, गोलोक गोकुल का ऐश्वर्य प्रधान स्थान है। उस प्रकार प्रेयसी वर्ग के साथ गोलोक में जो निवास करते हैं, उन आदि पुरुष गोविन्द का भजन मैं करता हूँ।

यद्यपि गोविन्द गोलोक नामक श्रीवृन्दावनीय वैभव स्थली में निवास करते हैं, तथापि प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्ति विलोचन द्वारा दृष्ट होते हैं, अचिन्त्य गुण स्वरूप होने परभी प्रेमनामक जो अञ्जन है, जिस से नेत्र का मालिन्य विदूरित होकर नेत्रज्योति अतिशय प्रकाशित होतीहै, और वस्तु सुष्ठु रूप से दिखाई देतीहै, उस प्रकार भक्ति विलोचन से श्रीगोविन्द दृष्ट होते हैं, ममत्व युक्त परिचर्य्या से श्रीगोविन्द वशीभूत होकर सदा समीप में रहते हैं। सूर्य दूरस्थित होनेपर भी स्वच्छ जल में उसका प्रतिविम्ब दृष्ट होता है, उस प्रकार मर्त्य लोक से गोलोक दूरस्थित होनेपर भी अन्य ममताशून्य ममता युक्त परिचर्य्या से अन्तः करण निर्मल होता है, और वह प्रतिविम्ब

रामादि मूर्त्तिषु कला नियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु ।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३९॥

मनस्यपि पश्यन्तीत्यर्थः । भक्तिरत्र समाधिः । तदुक्तं श्रीगीतासु-ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहमिति ॥३८॥

यः कृष्णः परमः पुमान् कलानियमेन रामादिमूर्त्तिषु तिष्ठन् भुवनेषु नाना अवतारं अकरोत् किन्तु यः परमः पुमान् कृष्णः स्वयं समभवत्-अवततार, तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥३९॥

स एव कदाचित् प्रपञ्चे निजांशेन स्वयमवतरतीत्याह रामादीति यः कृष्णाख्यः परमः पुमान् कलानियमेन तत्र तत्र नियतानामेव शक्तीनां प्रकाशेन रामादिमूर्त्तिषु तिष्ठन् तत्तन्मूर्त्तीः प्रकाशयन्

के समान मन एवं हृदय में सदा दृष्ट होते हैं, यहाँपर भक्ति शब्द का अर्थ समाधि है । मनकी सम्यक् एकाग्रता । श्रीगीता में उक्त विषय का उल्लेख सुस्पष्ट रूप में है, भक्ति पूर्वक जो भी मेरी परि-चर्य्या करताहै, वह मेरे में रहताहै, और में उन में रहताहूँ । अर्थात् श्रीगोविन्द गोलोक में निवास करने पर भी प्रेमरूप अञ्जन से समुज्ज्वल भक्ति रूप विशिष्ट लोचन के द्वारा साधुभक्तगण, जिन अचिन्त्य विविध सद्गुण विभूषित श्रीश्यामसुन्दर को निज हृदय में सर्वदा अवलोकन करते रहते हैं उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूँ ॥३८॥

वह श्रीगोविन्द कदाचित् भूमण्डल में निजांश के साथ स्वयं अवतीर्ण होते हैं, रामादि मूर्त्ति के द्वारा अवतीर्ण होते हैं । जो कृष्ण नामक परम पुरुष कला नियम से उन उन अवतारों में तत् कालोप योगी शक्ति प्रकाशन द्वारा रामादि मूर्त्तिमें स्थित होकर अर्थात् उन उन मूर्त्ति को प्रकट कर भुवन में अनेक कार्य करने के लिए अवतीर्ण होते हैं, किन्तु जो स्वयं ही कृष्ण रूप परम पुमान् अवतीर्ण

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि
कोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम् ॥

नानावतारमकरोत् । य एव स्वयं समभवदवततार। तं लीला विशेषेण गोविन्दं सन्तमहं भजामीत्यर्थः। तदुक्तं श्रीदशमे देवैः– मत्स्याश्वकच्छपवराहनृसिंहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः त्वं पासि नस्त्रिभुवनञ्च यथाधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते" इति ॥३९॥

जगदण्ड, कोटिषु अशेषवसुधादिविभूतिभिन्नं निष्कलं अनन्तं अशेष भूतं, तद्ब्रह्म, यस्य प्रभवतः प्रभा भवति, तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥४०॥

तदेवं तस्य सर्वावतारित्वेन पूर्णत्वमुक्त्वा स्वरूपेणाप्याह यस्येति। द्वयोरेकरूपत्वेऽपि विशिष्टतयाविर्भावात् श्रीगोविन्दस्य धर्म्मिरूपत्वमविशिष्टतयाविर्भावात् ब्रह्मणो धर्मरूपत्वं ततः पूर्वस्य मण्डलस्थानीयत्वमितिभावः। तत्र विष्णुपुराणमपि संप्रवदते "शुभाश्रयः सचित्तस्य सर्वगस्य तथात्मनः। इति। व्याख्यातञ्च श्रीधर स्वामिभिः "सर्वगस्यात्मनः पर ब्रह्मणो अप्याश्रयः प्रतिष्ठा"

होते हैं। लीला विशेष में स्थित उन श्रीगोविन्द का मैं भजन करता हूँ, यह अर्थ है, श्रीदशम में देवों ने कहा भी है। मत्स्य, अश्व, कच्छप, वराह, नृसिंह, हंस, राजन्य, विप्र, विबुध रूप धारण कर आप अवतार ग्रहण किए थे। हे ईश ! हे यदूत्तम ! आप रक्षक हो, त्रिभुवन की रक्षा जिस प्रकार आप ही करते हो, अधुना उस प्रकार ही भुवन का भार को हरण करो, आपको प्रणाम करता हूँ ॥३९॥

इस के पूर्व में सर्वावतारि रूप में श्रीकृष्ण की पूर्णता प्रति पादन कर सम्प्रति स्वरूप से भी पूर्णत्व प्रति पादन करते हैं, तत्त्व में श्रीगोविन्द एवं ब्रह्म एक होने से भी शक्ति शक्तिमत्स्वरूप विशेषण विशिष्ट होकर आविर्भूत होने से श्रीगोविन्द धर्मिरूप हैं, अविशिष्ट रूप में आविर्भूत होने से ब्रह्म धर्म रूप है। अतएव श्रीगोविन्द का मण्डल स्थानीयत्व है,इसमें विष्णु पुराणका संवाद इस

तद्‌ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतम्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥४०॥

तदुक्तं भगवता—ब्रह्मणोऽहि प्रतिष्ठाहमिति । अतएवैकादशे स्व विभूति गणनायां तदपि स्वयं गणितं--पृथिवीवायुराकाश आपोज्योतिरहं महान् । विकारः पुरुषो व्यक्तं रजः सत्वं तमः परम्" इति । टीका चात्र "परं ब्रह्म चेत्येषा श्रीमत्स्यदेवेनाप्यष्टमे तथोक्तं-मदीयं महिमानञ्च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ।" अतएव श्रीयामुनाचार्यचरणैरपि, " यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यत् दशोत्तराण्यावरणानि यानि च, गुणाः प्रधानं पुरुषं परं पदं परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः" इति । अतएवाह ध्रुवश्चतुर्थे, "या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद् भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् । सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ माभूत् किमन्तकासिलुलितात् पततां विमानात्" । अतएवात्मारामाणामपि तद् गुणेनाकर्षः श्रूयते । आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतो गुणो हरिः । इति । अत्र विशेषजिज्ञासा चेन् श्रीभागवत सन्दर्भो दृश्यतामित्यलमति विस्तरेण ॥४०॥

प्रकार है, सच्चित्तका सर्व व्यापक का आत्मा का शुभाश्रय है, श्रीधर स्वामिपादने इस व्याख्या इस प्रकार की है । सर्वग आत्मा का पर ब्रह्म का भी आश्रय प्रतिष्ठा है, श्रीभगवान् ने भी कहा है-मैं ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ । अतएव एकादश स्कन्ध में स्व विभूति गणना में उस की गणना स्वयं की है, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, ज्योति अहंकार महत्तत्व, विकार पुरुष व्यक्त रजः सत्व तमः परम्" टीका यहाँ की परं-ब्रह्म । श्रीमत्स्यदेवने भी अष्टम में कहा है, मेरी महिमा को पर ब्रह्म कहते हैं, अतएव श्रीयामुनाचार्य चरण ने भी कहा है, अण्ड अण्डान्तर गोचर, दशोत्तर आवरण समूह, गुण समूह प्रधान पुरुष, परपद, परात्पर ब्रह्म,-आपकी विभूति है, अतएव चतुर्थस्कन्ध में ध्रुवने भी कहा है, आप के चरणाविन्द का ध्यान में एवं आप के

माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते
त्रैगुण्यतद्विषयवेदवितायमाना ।

यस्य त्रैगुण्य तद्विषयवेदवितायमाना माया हि जगदण्डशतानि सूते, सत्त्वावलम्बिपरसत्त्वविशुद्धसत्त्वं आदि पुरुषं तं गोविन्दं अहं भजामि ॥४१॥

तदेवं तस्य स्वरूपगतमाहात्म्यं दर्शयित्वा जगद्गत माहात्म्यं दर्शयति द्वाभ्यां । तत्र वहिरङ्गशक्तिमायाचिन्त्यकार्यगतमाह माया हीति । मायया हि तस्य स्पर्शो नास्तीत्याह–सत्त्वेति, सत्त्वस्य रजस्तमो मिश्रस्याश्रयि यत् परं तदमिश्रं शुद्धं सत्त्वं, तस्मादपि विशुद्धं चिच्छक्तिवृत्तिरूपं सत्त्वं यस्य तं । तथोक्तं श्रीविष्णु पुराणे सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः । स शुद्ध सर्वशुद्धेभ्यः

जनों के चरित्र श्रवण से जो आनन्द होता है, वह आनन्द, आपकी महिमा रूप ब्रह्म चिन्तन में नहीं है, और जो काल कवलित साम्राज्यादि है उस में जो आनन्द है, वह कहने के योग्य ही है। अतएव आत्मारामगण उनमें आकृष्ट होते हैं, आत्माराम निर्ग्रन्थ मुनिगण भी उरुक्रम श्रीहरि में अहैतुकी भक्ति करते हैं, श्रीहरि उस प्रकार गुणविशिष्ट हैं। इस विषय में विशेष जिज्ञासा हो तो भागवत सन्दर्भ देखें। कोटि कोटि ब्रह्माण्ड के मध्य में पृथिव्यादि रूप जो सव विभूति हैं उस से भिन्न विभूति रूप निष्कल–अर्थात् निरुपाधि, अनन्त अशेष प्रकार से अवस्थित ब्रह्म भी जिन प्रभाव शाली गोविन्द की अङ्ग कान्ति है, उन आदि पुरुष श्रीगोविन्द का मैं भजन करता हूँ ॥४०॥

श्रीगोविन्द का स्वरूपानुबन्धि विशुद्ध सत्त्वका माहात्म्य को दिखाकर जगद् गत माहात्म्य को कहकर स्तव करते हैं, दो श्लोकों के द्वारा उस का वर्णन करेंगे। उस में से वहिरङ्ग शक्ति माया का अचिन्त्य कार्य्यं विवरण को कहते हैं, जिन की माया शक्ति अनन्त ब्रह्माण्ड का सृजन करती है किन्तु उस माया शक्ति के साथ श्री-

सत्त्वावलम्बिपरसत्त्वविशुद्धसत्त्वम् ।
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥४१॥
आनन्दचिन्मयरसात्मतया मनःसु
यः प्राणिनां प्रतिफलन् स्मरतामुपेत्य ।

पुमानाद्यः प्रसीदतु । ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वय्येका सर्वं संश्रये ह्लादतापकरी मिश्रात्वयि नो गुणवर्ज्जिते" इति । विशेषतः श्रीभागवतसन्दर्भे तदिदमपि विवृतमस्ति ॥४१॥

यः प्राणिनां मनःसु आनन्दचिन्मयरसात्मतया प्रतिफलन् स्मरतामुपेत्य भुवनानि लीलायितेन अजस्रम् जयति तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥४२॥

गोविन्द का स्पर्श नहीं है, आप विशुद्ध सत्त्व में विराजित हैं, विशुद्ध सत्त्व को समझाते हैं, सत्त्व रज, तमात्मिका माया, गुणत्रय अन्योन्य मिलित रहता है, रजः तमो गुण से असंयुक्त-सत्त्व को शुद्ध सत्त्व कहते हैं, उससे भी विशुद्ध सत्त्व को चिच्छक्ति कहते हैं, वह सत्त्व मायिक सत्त्व नहीं है, किन्तु चिच्छक्ति वृत्ति रूप विशुद्ध सत्त्व है, उन विशुद्ध सत्व रूप श्रीहरि की मूर्त्ति है, उन श्रीगोविन्द का मैं भजन करताहू । श्रीविष्णु पुराण में उक्तहै, भगवान् में प्राकृत सत्त्व रजः तमः गुण नहीं है, वह समस्त शुद्ध गुणों से शुद्ध हैं, उन आद्य पुरुष प्रसन्न हो, सर्वाश्रय आप में ही ह्लादिनी सन्धिनी सम्बित् शक्ति है, जीवमें वह शक्ति नहीं, प्राकृत ह्लाद, रज,तमः मिश्रितगुण ईश्वर स्वरूप आपमें नहीं है, किन्तु जीव में है । इसका विशेष विवेचन श्री-भागवत सन्दर्भ मेंहै, अतः जिनकी वहिरङ्गात्रिगुणात्मिका माया शत शत ब्रह्माण्ड की रचना करतीहै, उसका वर्णन त्रैगुण्य विषयक वेद में सुविस्तृत वर्णनहै, किन्तु माया के साथ श्रीहरि के स्वरूप का संस्पर्श नहीं है, उनका स्वरूप सत्त्व रज तमशून्य विशुद्ध चिच्छक्तिमय है, उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हू ॥४१॥

अनन्तर उज्ज्वल प्रेममय मोहनता को कहते हैं,—आनन्द

लीलायितेन भुवनानि जयत्यजस्रम् ।
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥४२॥

अथ तन्मयमोहनत्वमाह-आनन्देति । आनन्दचिन्मयरस उज्ज्वलाख्यः प्रेमरसः, तदात्मतया तदालिङ्गिततया प्राणिनां मनः सु प्रतिफलन्-सर्वमोहनस्वांशच्छुरितपरमाणुप्रतिविम्बतथाकिञ्चिदुदयन्नपि स्मरतामुपेत्येत्यादि योज्यम् । यदुक्तं रासपञ्चाध्याय्याम्-साक्षान्मन्मथ मन्मथ" इति "चक्षुषश्चक्षुः "इतिवत्; तदेवं तत्कारणत्वेऽपि स्मरावेशस्य दुष्टत्वं जगदावेशवत् ॥४२॥

चिन्मय रसात्मरूप मे प्राणि निवह के मन में प्रतिफलित होकर त्रिभुवन को वशीभूत करते रहते हैं, अर्थात् जो उज्ज्वलाख्य प्रेम रस से विभावित है, एवं उस परम मोहन स्वरूप के किञ्चित् अंश से प्राणि निवह के अन्तः करण में प्रति फलित होकर अर्थात् प्रतिबिम्व रूप आभास के द्वारा कन्दर्प स्वरूप को प्रकट कर लीला से निरन्तर त्रिभुवन को जय करते रहतेहैं, तज्जन्य जिनको साक्षात् मन्मथमन्मथ रूपमें श्रीमद्भागवतके रासपञ्चाध्यायमें उल्लेख किया गयाहै । यहाँ ज्ञातव्य विषय यह है कि–जिस प्रकार भगवान् से जगत् उत्पन्न होने पर भी उस जगत् के विषय में भोक्ताभोग्य रूप में आवेश भगवत् भजन में विघ्नस्वरूप है, तद्रूप कन्दर्प,—भगवान् के अंश प्रतिफलित स्वरूप होने पर भी उस का आवेश अत्यन्त दोषावह है, उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूँ । आनन्दचिन्मय रस शब्द से उज्ज्वलाख्य प्रेमरस को जानना होगा, उसका ही प्रतिशब्द है, तदात्मतया,—उस से आलिङ्गित होकर, प्राणियों के मन समूह में–अन्तः करण की सङ्कल्प विकल्पात्मक वृत्ति में, प्रतिफलन—प्रति विम्वित होकर अर्थात् सर्वमोहतस्वांश समग्रपदार्थ मोहन कारी चिन्मयप्रेमरस का अंश च्छुरित परमाणु प्रतिविम्वतया, अंश मात्र से प्रकाशित परमाणु के प्रतिविम्व रूप से, किञ्चिदुदयन्नपि, स्वल्प आभास मात्र उदित होकर भी, स्मरतामपेत्येत्यादियोज्यम्, प्राकृत

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवी महेश हरिधामसु तेषु तेषु ।

तस्य गोलोकनाम्नि तले च देवी महेश हरिधामसु तेषु तेषु येन ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥४३॥

तदिदं प्रपञ्चगतं माहात्म्यमुक्त्वा निजधामगतमाहात्म्यमाह-गोलोकेति । देवीमहेशेत्यादि गणनं व्युत्क्रमेण ज्ञेयम् । देव्यादीनां यथोत्तरमूर्द्धोर्द्ध प्रभवत्वात्तल्लोकानामूर्द्धोर्द्ध भावित्वमिति । गोलोकस्य सर्वोर्द्धगामित्वं व्यापकत्वञ्च व्यवस्थापितमस्ति, भुवि प्रकाशमानस्य वृन्दावनस्य तु तेनाभेदः पूर्वत्र दर्शितः । "स तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना । धृतोधृतिमतावीर निघ्नतोपद्रवान्गवाम्" इत्यनेनाभेदेनैव हि गोलोक एव निवसतीत्येवकारः संघटते । यतो भुवि प्रकाशमानेस्मिन् वृन्दावनेऽपि तस्य नित्यविहारित्वं श्रूयते । यथा आदि वाराहे-वृन्दावनं द्वादशमं वृन्दया परिरक्षितम् । हरिणाधिष्ठितं तच्च ब्रह्मरुद्रादिसेवितम् । तत्र च विशेषः, कृष्ण क्रीड़ासेतु-

---

व्यवाय रूप काम धर्म को प्राप्त कराकर सबको वशीभूत करते रहते हैं, अतः रासपञ्चाध्याय में श्रीकृष्ण को साक्षात् मन्मथ मन्मथ-कन्दर्प दर्प दमन रूप से कहा गया है, जिस प्रकार-चक्षुषश्चक्षुः । शब्द से निखिल नेत्रों के एक मात्र नेत्र का बोध होता है, उस प्रकार जानना होगा । अतएव जागतिक काम रूप स्मर का कारण ईश्वर होनेपर भी स्मर का आवेश सर्वथा दुष्ट है । जगदावेशवत्-जगत्-ईशर का अंश होनेपर भी जगत् के किसी पदार्थ में भोक्तृभोग्य रूप में आवेश होना सर्वथा दोषावह है, उस प्रकार जानना होगा ॥४२॥

प्रपञ्चगत माहात्म्य वर्णन के पश्चात् निज धामगत माहात्म्य को कहते हैं, श्रीवृन्दावन के अभिन्न प्रकाश स्वरूप श्रीगोलोक नामक निज धाम के क्रमशः निम्न देश में हरिधाम, महेश्वर धाम, एवं देवी धाम है, एवं उस उस धाम में शास्त्रादि प्रसिद्ध प्रभाव समूह का जो

ते ते प्रभावनियया विहिताश्च येन
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ।।४३।।

बन्धं महापातकनाशनम् । वलभीं तत्रक्रीड़ार्थं कृत्वा देवोगदाधरः गोपकैः सहितस्तत्रक्षणमेकं दिने दिने । तत्रैव रमणार्थं हि नित्य कालं स गच्छति ।" इति । अतएव गौतमीये श्रीनारद उवाच-किमिदं द्वादशाभिख्यं वृन्दारण्यं विशाम्पते । श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि योग्योऽस्मि मे वद ।।" श्रीकृष्ण उवाच—इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम् । अत्र ये पशवः पक्षि मृगाः कीटा नरामराः ।

ये वसन्ति ममाधिष्टे मृता यान्ति ममालयम् ।
अत्र या गोपकन्याश्च निवसन्ति ममालये ।
योगिन्यस्ता मयानित्यं मम सेवा परायणाः ।
पञ्च योजन-मेवास्ति वनं मे देहरूपकम् ।
कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी ।
अत्र देवाश्च भूतानि वर्त्तते सूक्ष्मरूपतः ।
सर्वदेवमयश्चाहं न त्यजामि वनं क्वचित् ।
आविर्भावस्तिरोभावो भवेन्मेऽत्र युगे युगे ।
तेजोमयमिदं रम्यमदृश्यं चर्म्मचक्षुषा " । इति ।

विस्तार करते रहते हैं, उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूँ । मूलमें देवीमहेश इत्यादि गणन को व्युत्क्रम से जानना होगा । देव्यादि लोकों की ऊर्द्धोर्द्ध स्थिति यथाक्रम से है, उस उस धाम के प्रभाव के कारण ही उस प्रकार ऊर्द्धोर्द्ध स्थिति होती है, गोलोक धाम की सर्वोर्द्ध गामिता एवं व्यापकता शास्त्र में संस्थापित है, भूमण्डल में प्रकाशमान वृन्दावन के साथ गोलोक धाम का जो अभेद है उस का प्रदर्शन पहले हुआ है, श्रीदशम में उक्त है, वृन्दावन नामक लोक विपन्न होने पर हे कृष्ण, हे वीर, धृतिमान समर्थ, आपने उस को धारण कर गोकुल को उपद्रवों से उद्धार किया । इस कथन से अभेद प्रतीति गोलोक एवं वृन्दावन की होती है, गोलोक एव निवसतीति

एतद्रूपमेवाश्रित्य वाराहादौ ते नित्यकदम्बादयो वर्णिताः। तस्माददृश्यमानस्यैव वृन्दावनस्य अस्मददृश्य तादृशप्रकाशविशेष एव गोलोक इति, लब्धम्। यदाचास्मद् दृश्यमाने प्रकाशे सपरिकरः श्रीकृष्ण आविर्भवति तदैव तस्यावतार उच्यते, तदैव च रस विशेष पोषाय संयोग विरहः, पुनः संयोगादिमयविचित्रलीलापारदार्य्यादि व्यवहारश्च गम्यते। यदा तु यथात्र यथा वान्यत्र तन्त्र यामल संहितापञ्चरात्रादिषु तथादिगदर्शनेन विशेषाज्ञेयाः। तथा च दशमे, "जयति जननिवासो देवकी जन्मवादः,, इत्यादि। तथाच पाद्मे

एव का प्रयोग भी उस प्रकार अभेदार्थ में सुसम्पन्न होता है, कारण पृथिवी में प्रकाश मान प्रसिद्ध वृन्दावन नामकस्थान में श्रीकृष्ण का नित्य अवस्थान वर्णितहै, आदि वाराह पुराण में वर्णित हैं, द्वादशवन सम्पन्न श्रीवृन्दावन वृन्दा के द्वारा परिरक्षित है, श्रीहरि के द्वारा अधिष्ठित हैं, और ब्रह्म रुद्रादि सेवित है। उस में विशेष वर्णन इस प्रकार है, कृष्णक्रीड़ा सेतुबन्ध का श्रवणसे महापातक नाश होता है, देव गदाधर उस स्थान में क्रीड़ा हेतु बलभी स्थापन कर गोपगण के साथ दिन दिन क्रीड़ाकर आनन्दित होते हैं, वहाँपर विहार करने के लिए नित्य काल को अतिवाहित आपकरते हैं॥ अतएव गौतमीय तन्त्र में श्रीनारद जीने कहा–हे विशाम्पते द्वादश संज्ञक श्रीवृन्दावन कौन हैं, हे भगवन्। मैं सुनना चाहता हूँ, यदि शुनने में मैं योग्य हूँ तो, आप वर्णन करें, श्रीकृष्ण बोले। यह रम्य वृन्दावन केवल मेरा ही धाम है, यहाँ पशु, पक्षि, मृग, कीट, नर अमर जो भी रहते हैं, इस मेरेधाम में मृत्यु को प्राप्त कर मेरे धाम को जाते हैं. मेरे आलय में जो भी गोपकी कन्याएँ हैं, वे सव ही मेरे सहित संयोग परायणा और नित्य सेवा परायणा हैं, मेरा देह सदृश यह वन पञ्च योजन विस्तृत है, सुषुम्ना नामक कालिन्दी परमामृत वाहिनी है। इस स्थान में देवतागण भूतगण सूक्ष्म रूप से रहते हैं, मैं सर्वदेवमय हूँ, किसी समय पर मेरा यहाँ आविर्भाव एवं तिरोभाव होता रहता है। यह तेजोमय है, चर्म चक्षुके द्वारा यह अदृश्य है, इस रूप को

निर्वाणखण्डे श्रीभगवद् व्यासवाक्ये, "पश्य त्वं दर्शयिष्यामि स्वरूपं वेद गोपितम्। ततो पश्याम्यहं भूप बालं कालाम्बुद प्रभम्। गोप कन्यावृतं गोपं हसन्तं गोपबालकैः। इति अनेन अत्र या गोप कन्याश्चेति पूर्वोक्तेन च अनालब्धस्त्रीधर्मवयस्कतादिबोधकेन कन्यापदेन तासामन्यादृशत्वं निराक्रियते। तथाच गौतमीये चतुर्थाध्याये अथ वृन्दावनं ध्यायेत्" इत्यारभ्य तद्ध्यानं-स्वर्गादिव परिभ्रष्ट कन्यकाशतमण्डितम्। गोपवत्सगणाकीर्णं वृक्षषण्डैश्च मण्डितम्। गोपकन्यासहस्रैस्तु पद्मपत्रायतेक्षणैः। अर्चितं भावकुसुमैः स्त्रैलोक्यैकगुरुं परम्। "इत्यादि। तद्दर्शनाधिकारी च दर्शित स्तत्रैव सदाचार प्रसङ्गे-"अहर्निशं जपेन्मन्त्रं मन्त्री नियत

अवलम्वन कर वाराहादि पुराणों में नित्य कदम्वादिका वर्णन है। अतएव हमारे दृश्यमान वृन्दावन का ही हमारे अदृश्य उस प्रकार प्रकाश विशेष ही गोलोक है। उक्त प्रकरण से यह तात्पर्य्य प्राप्त हुआ। जव हमारे दृश्यमान वृन्दावन में सपरिकर श्रीकृष्ण आविर्भूत होते हैं, उस समय ही उनको अवतार कहा जाता है। उस समय आस्वादन विशेष को पुष्ट करने के लिए संयोग विरह को अपनाते हैं, इस से संयोगादिमय विचित्रलीला पारदार्य्यादि व्यवहार भी होता है, इस लीला का अनुष्ठान प्रकटमें जिस प्रकार होताहै, उस अप्रकट होने पर भी वैसा होता ही रहताहै,इसका विवरण कल्प.तन्त्र यामल, संहिता, पञ्चरात्र प्रभृति ग्रन्थ में है। उस के अनुसार ही जानना होगा। श्रीदशम में भी जयति जन निवासो देवकी जन्मवाद इत्यादि श्लोक में लीला का नित्यत्व स्थापन हुआ है। तथाच पद्म पुराणस्थ निर्वाण खण्डके श्रीभगवद व्यास वाक्य में उक्तहै, तुम देखो, मैं दिखा रहा हूँ। वेद गोपित स्वरूप को। हे राजन्, उसके पश्चात् मैंने देखा कालमेघ के समान एक वालक को, जो गोप कन्याओं से घेरे हुए थे, गोपवालक गण उसे हँसा रहे थे। इस से-पूर्व में कहागया है, यहाँपर जो गोपकन्यकाएँ हैं, कन्यापदसे स्त्रीधर्म प्राप्त होना तथा स्त्री शब्द प्रयोग योग्य वयस प्राप्त होना अर्थ भी नहीं आता है,

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि विभर्त्तिदुर्गा ।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥४४॥

यस्य सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिः एका दुर्गा छाया इव भुवनानि विभर्त्ति, यस्य इच्छानुरूपं अपि सा चेष्टते, तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥४४॥

मानसः । स पश्यति न सन्देहो गोपरूपधरं हरिम् ॥ इति त्रैलोक्य सम्मोहनतन्त्रे चाष्टादशाक्षरप्रसङ्गे, अहर्निशं जपेद् यस्तु मन्त्री नियतो मानसः । स पश्यति न सन्देहो गोपवेश धरं-हरिम् ॥ इति अतएव तापन्यां ब्रह्मवाक्यम्–तदु होवाच ब्राह्मणोऽसावनवरतं मे ध्यातस्तुतः । परार्द्धान्ते सोऽवुध्यते गोपवेशो मे पुरस्तादाविर्वभूवेति तस्मात् क्षीरोदशाय्याद्यवतारतया तस्य यत् कथनं तत्तु तदंशानां तत्र प्रवेशापेक्षया अलमति विस्तरेण श्रीकृष्ण सन्दर्भे दर्शितचरेण॥४३

अथ प्रस्तुतमनुसरामः । पूर्वं देवीमहेशहरिधाम्नामुपरिचर धामत्वं तस्य दर्शितं, सम्प्रति तु तत्तदाश्रयत्वादेव योग्यमिति दर्शयति सृष्टीति पञ्चभिः । यथोक्तं श्रुतिभिः । "त्वमकरणः स्वराड़खिलकारक शक्तिधर स्तव वलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजया निमिषा" इति ॥४४॥

गौतमीय के चतुर्थाध्यायमें उक्तहै,अनन्तर श्रीवृन्दावन का ध्यानकरे, इस प्रकार आरम्भकर उनका ध्यान कहते हैं। मानो स्वर्ग से ही आई हुई असंख्य कन्यका परिवृत हैं। गोवत्ससमाकीर्ण है, उस स्थान वृक्ष समूह से मण्डित है, कमल नयनी असंख्य गोपकन्यकाओं के द्वारा भाव कुसुम से अर्चित होते रहते हैं, वह तीनलोकों के एकमात्र परम गुरु है। उस ग्रन्थ के सदाचार प्रसङ्ग में दर्शनाधिकारी का निर्णय इस प्रकार है, मन्त्री नियतमानस होकर अहर्निश मन्त्र का जप करने से सुनिश्चित रूप से दर्शन प्राप्त करेगा, गोपवेश धारी हरि का दर्शन

क्षीरं यथा दधिविकारविशेषयोगात् ।
सञ्जायते नतु ततः पृथगस्ति हेतोः ।।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्य्याद्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।४५।।

यथा क्षीरं विकारविशेषयोगात् दधिसञ्जायते। तथा यः कार्य्याद् शम्भुतां अपि समुपैति, तु ततः हेतो पृथग् न अस्ति, तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ।।४५।।

अथ क्रम प्राप्तं महेशं निरूपयति क्षीरमिति। कार्य्यकारणभाव मात्रांशे दृष्टान्तोऽयं दार्ष्टान्तिककारणस्य निर्विकारत्वात् चिन्तामण्यादिवत् अचिन्त्यशक्त्यैव तदादिकार्य्यतयापिस्थितत्वात् ।

वह करेगा, इस में सन्देह नहीं है। उस ग्रन्थ के अन्यस्थान में वर्णित है, बुद्धिमान् व्यक्ति श्रीवृन्दाबन में तवतक अवस्थान करे, यावत् श्रीकृष्ण का दर्शन न हो। अतएव तापनी में ब्रह्मवाक्य इस प्रकार है, तद् उ-ह-उवाच, —अनवरत मैंने ध्यान स्तव किया, परार्द्ध के अन्त होने के बाद उनका दर्शन हुआ. गोपवेश धारण कर मेरे सामने आविर्भूत हुये थे। अतएव क्षीरोदशायी के अवतार रूप में कृष्ण को जो कहते हैं, वह अवतार के समय क्षीरोदशायी का अंश उनमें प्रविष्ट था। श्रीकृष्ण सन्दर्भ में इस विषय का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है ।।४३।।

जिनकी सृष्टि स्थिति प्रलय साधनकारिणी एकमात्र शक्ति श्रीदुर्गा, छायाके समान अनुवर्त्तिनी होकर भुवन समूह को धारण करती है,एवं जिनकी इच्छानुरूप ही चेष्टा करती रहती है, उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूं। अनन्तर मूलपद्य की व्याख्या करता हूं। पूर्वश्लोक में देवी महेश हरिधामके उपरिस्थित धाम रूपमें गोलोक का वर्णन किया है, वह भी सवधाम का आश्रय होनेसे ही सम्भव होगा, अतः सम्प्रति उन उन धामका आश्रय भी वह धाम

श्रुतिश्च, एको नारायण एवाग्र आसीत्, न ब्रह्मा, न च शङ्करः, स मुनिर्भूत्वा समचिन्तयत्। तत एवैते व्यजायन्त विश्वो हिरण्यगर्भोऽग्निर्वरुणरुद्रेन्द्राः इति तथा स ब्रह्मणा सृजति रुद्रेण नाशयति। सोऽनुत्पत्तिलय एव हरिः, कारणरूपः परः परमानन्दः'' इति। शम्भोरपि कार्य्यत्वं गुणसम्बलनात्। यथोक्तं श्रीदशमें,–हरिर्हि-निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः। शिवः शक्तियुतः शश्वत्त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः'' इति। एतदेवोक्तं—विकारविशेषयोगादिति। कुत्र-चिदभेदोक्ति र्या दृश्यते तामपि समादधाति ततो हेतोः पृथक्त्वं नास्तीति। यथोक्तमृग्वेदशिरसि—अथ नित्यो देव एको नारायणः, ब्रह्मा नारायणः,शिवश्च नारायणः,शक्रश्च नारारणः,द्वादशादित्याश्च नारायणः, वासवो नारायणः, अश्विनी नारायणः, सर्वे ऋषयो नारायणः, कालश्च नारायणः, दिशश्च नारायणः, अधश्च नारायणः, ऊर्द्धश्च नारायणः, अन्तर्वहिश्च नारायणः। नारायण एवेदं सर्वं जातं जगत्यां जगदित्यादि। द्वितीये ब्रह्मणात्वेवमुक्तम् ''सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः। विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृग्'' इति ॥४५॥

है, उसका वर्णन पाँच श्लोकों से करते हैं, श्रुतियोंने भी कही है, आप स्वराट् हैं, एवं करण द्वारा निर्म्मित नहीं हैं, अथच अखिल कारक शक्ति सम्पन्न हैं, मायाके साथ समस्त अधिकारी देवतावर्ग आपकी सेवाहेतु उपहार प्रदानके लिए निरन्तर उपस्थित रहते हैं।।४४

अनन्तर क्रमप्राप्त महेशस्वरूप का निरूपण करते हैं। जिस प्रकार दुग्ध विकारजनक अम्लादि द्रव्य संयोगसे दधि रूपमें परिणत होता है, तद्रूप कार्य्यवशतः जो शम्भुरूप धारण करते हैं, मौलिक तत्त्वमें पृथक् कारण नहीं है। यहाँपर कार्यकारणभाव बोधके लिए दधिका दृष्टान्त है, विकारांश में नहीं, कारण स्वरूप श्रीगोविन्द अविकारी तत्त्व हैं। उन आदिपुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूं। चिन्तामणि प्रभृतिके समान अचिन्त्यशक्ति द्वारा ही कार्यरूप में स्थित होते हैं। श्रुति इस प्रकार है, प्रथम एकमात्र नारायण ही

दीपार्च्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा ।
य स्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥४६॥

विवृतहेतुसमानधर्मा दीपार्चिः एव दशान्तरं अभ्युपेत्य हि दीपायते, यः तादृग् एव हि च विष्णुतया विभाति तं आदिपुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥४६॥

अथ क्रमप्राप्तं हरिस्वरूपमेकं निरूपयन् गुणावतारमहेशप्रसङ्गाद् गुणावतारं विष्णुं निरूपयति–दीपार्चिरिति । तादृक्ते हेतुः, विवृत-हेतु समानधर्मेति । यद्यपि श्रीगोविन्दांशांशः कारणार्णवशायी तस्य

थे, ब्रह्मा, शङ्कर नहीं थे, उन्होंने मुनि होकर चिन्ता की, अनन्तर विश्व हिरण्यगर्भ अग्नि, वरुण, रुद्र, इन्द्र प्रभृति आविर्भूत हुये थे। तथा वह ब्रह्मसे सृजन एवं रुद्रसे नाश करते हैं। श्रीहरि ही एकमात्र अनुत्पत्ति एवं लयशून्य हैं, परम कारणरूप, एवं परमानन्द स्वरूप हैं, तमोरूप गुणका सम्वलन से ही शम्भुका भी कार्यत्व है। श्रीदशम में कहा है,–श्रीहरि ही निर्गुण है, साक्षात् स्वरूप है, पुरुषस्वरूप है, एवं प्रकृति से अतीत हैं। श्रीशिव–शक्तियुक्त है, नित्यत्रिलिङ्ग है गुणसंवृत हैं। इस विवरणको ही स्पष्टरूपसे कहा है—विकाश विशेष योगके कारण। स्थलविशेष में श्रीहरिके सहित श्रीशिवका अभेद कथन है, उसका समाधान करते हैं। मूल कारण तत्त्वसे पृथक् कारण नहीं हैं। ऋग्वेदशिरसि कथित है—अथ नित्यदेव एक नारायण हैं, ब्रह्मा नारायण हैं, शिवभी नारायण हैं, शक्रभी नारायण है, द्वादशादित्यगणभी नारायण हैं, वासव भी नारायण है, अश्विन नारायण है, सकल ऋषिगण नारायण हैं, कालभी नारायण है, दिक्समूह नारायण है, अधोदेशभी नारायण है, ऊर्द्ध देश भी नारायण है, अन्तर्वहि नारायण है, जगतके समग्र सृष्ट पदार्थ एवं

यः कारणार्णवजले भजति स्म योग
निद्रामनन्तजगदण्डसरोमकूपः ।
आधारशक्तिमवलम्ब्य परां स्वमूर्त्तिम् ।
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥४७॥

यः अनन्तजगदण्डसरोमकूपः परां स्वमूर्त्ति अवलम्ब्य कारणार्णव जले योगनिद्रां भजति स्म तं आदिपुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥४७॥

गर्भोदकशायी, तस्य चावतारोऽयं विष्णुरिति लभ्यते तथापि महादीपात् क्रमपरम्परयातिसूक्ष्मनिर्म्मलदीपस्योदितस्य, ज्योति रूपत्वांशे यथा तेन सह साम्यं । तथा गोविन्देन विष्णुर्गम्यते । शम्भोस्तु तमोऽधिष्ठानत्वात् कज्ज्वलमयसूक्ष्मदीपशिखास्थानीयस्य न तथा साम्यमिति बोधनाय तदित्थमुच्यते, महाविष्णोरपि कला-विशेषत्वेन दर्शयिष्यमाणत्वात् ॥४६॥

अथ कारणार्णवशायिनंनिरूपयति । अनन्तजगदण्डैः सह रोमकूपा यस्य सः । सहशब्दस्य पूर्वनिपाताभावः, आर्षः । आधारशक्तिमयीं परां स्वमूर्त्ति, शेषाख्याम् ॥४७॥

जगत् भी नारायण हैं, द्वितीय स्कन्ध में ब्रह्माने भी इस प्रकार कहा है, मैं श्रीहरिके द्वारा नियुक्त होकर सृजन करता हूं, श्रीशिव श्रीहरि के अधीन होकर ही विनाश कार्य करते हैं, त्रिशक्तिधृग् हरि, विश्वका पुरुष रूपसे परिपालन करते रहते हैं ॥४५॥

अनन्तर क्रमप्राप्त एक श्रीहरि स्वरूप को निरूपण करनेके लिए गुणावतार श्रीविष्णुका स्वरूप वर्णन करते हैं। जिस प्रकार प्रदीप की शिखा दशान्तर अर्थात् अन्यवर्त्ति को प्राप्त कर उसके तुल्य ही अन्य प्रदीप में परिणत होती है, उस प्रकार जो कारणावतार विष्णु रूपको धारण करते हैं, मैं उन आदि पुरुष श्रीगोविन्द का भजन करता हूं। दीपार्च्चि के प्रति हेतु विवृत हेतु समान धर्मा है, यद्यपि श्रीगोविन्द का अंशाश कारणार्णवशायी है, उनका अंशगर्भोदक

यस्यैक निश्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्तिलोमविलजाजगदण्डनाथाः ।
विष्णु र्महान् स सह यस्य कला विशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥४८॥

अथ यस्य एकनिश्वसितकालं अवलम्ब्य लोमविलजाः जगदण्डनाथाः जीवन्ति, स महान् विष्णुः इह यस्य कलाविशेषो भवति, तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥४८॥

तत्र सर्वब्रह्माण्डपालको यस्तत्त्वावतारतया महाब्रह्मादि सहचरत्वेन तदतिभिन्नत्वेन च महाविष्णुर्दर्शितः । अत्र च तमप्येवं तत्सलक्षण-तया वर्णयति । तत्तज्जगदण्डनाथा विष्ण्वादयः जीवन्ति तत्तदधिकारि-तया जगति प्रकटं तिष्ठन्ति ॥४८॥

शायी है, उनका ही अवतार यह विष्णु होते हैं । तथापि महादीपसे क्रम परम्परासे अतिसूक्ष्म निर्म्मल दीपका उदय होता है । ज्योति रूपांश में पूर्वदीप की समानता है, उस प्रकार विशुद्ध सच्चिदानन्दांश में श्रीगोविन्दके सहित समता है । किन्तु शम्भु–लीलाहेतु तमो–ऽधिष्ठानताके कारण कज्ज्वलमय सूक्ष्मदीपशिखा स्थानीय होने से विष्णुके साथ जिस प्रकार साम्य है, उस प्रकार साम्य शिवके साथ नहीं है, इसका बोध कराने के लिए है, यह प्रकरण उठाया गया है, महाविष्णु भी कलाविशेष है, इसका प्रदर्शन आगे करेंगे ॥४६॥

अनन्तर कारणार्णवशायिका वर्णन करते हैं, जिनके रोमविवर में अनन्तकोटि ब्रह्माण्डविद्यमान है एवं जो आधारशक्ति स्वरूप 'अनन्त' नामक निजमूर्त्ति विशेष को अवलम्बन कर कारण समुद्रके जलमें योगनिद्रा को आश्रयकर रहते हैं, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूं । जिनके रोमकूप समूह ही अनन्त ब्रह्माण्ड पूर्ण है, यहाँ सहशब्दका पूर्वनिपात न होना आर्षप्रयोग है । आधारशक्तिमयी परा स्वमूर्त्ति को अवलम्बन कर हैं, यह मूर्त्ति शेषनामक मूर्त्ति हैं॥४७

भास्वान् यथाश्मसकलेषु निजेषुतेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र ।
ब्रह्मा य एव जगदण्डविधानकर्त्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥४९॥

यथा भास्वान् स्वीयं कियत् तेजः अपि निजेषु अश्मसकलेषु प्रकटयति, तद्वद् अत्र यः एषः ब्रह्मा जगदण्डविधानकर्त्ता भवति, तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥४९॥

तदेवं देव्यादीनां तदाश्रयकत्वं दर्शयित्वा प्रसङ्गसङ्गत्या ब्रह्मणश्च दर्शयन् अतीवभिन्नतया जीवत्वमेव स्पष्टयति भास्वानिति । भास्वान् सूर्य्यो, यथा निजेषु नित्यस्वीयत्वेन विख्यातेषु अश्मसकलेषु सूर्य्य-कान्ताख्येषु स्वीयं किञ्चित्तेजः प्रकटयति; अपिशब्दात्तेन तदुपाधिकांशेन दाहादिकार्य्यं स्वयमेवकरोति, तथा य एव जीव विशेष किञ्चित्तेजः प्रकटयति, तेन तदुपाधिकांशेन स्वयमेव ब्रह्मा सन् जगदण्डे ब्रह्माण्डे

अवतार प्रकरण में जिन महाविष्णु का उल्लेख हुआ है, जो जो आपके अवतार हैं, और सर्वब्रह्माण्ड का पालक है, महाब्रह्मादि के सहचर होते हुये भी उनसे अतिभिन्न है, यहाँपर उनका वर्णन स्वरूप निर्णयके द्वारा करते हैं, उन उन जगत्के अधीश्वर विष्णु प्रभृति जीवित रहते हैं, उन उन अधिकार में जगत्में प्रकट होकर अवस्थान करते हैं। अर्थात् जिन महाविष्णुके एक निश्वास कालको अबलम्बन कर उनके लोमविवरस्थ समस्त ब्रह्माण्ड के पालनादि कर्त्ता विष्णु ब्रह्माशिव निज निज अधिकार में अवस्थित रहते हैं, उन महाविष्णु भी जिनके अंशस्वरूप हैं, इस प्रकार आदिपुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूं ॥४८॥ देवी प्रभृति भी श्रीगोविन्दके आश्रित हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं, उसको दिखाकर प्रसङ्ग सङ्गतिसे ब्रह्माके स्वरूप वर्णन करने के उद्देश्य से उनसे अतीव भिन्नरूप से ब्रह्माका वर्णन करते हैं, ब्रह्मा-प्रचुरपुण्य सम्पन्न जीव होते हैं। सूर्य जिस प्रकार सूर्य्यकान्त

यत् पादपङ्कजयुगं विनिधाय कुम्भ
द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः।
विघ्नान् विहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य।
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥५०॥

सः गणाधिराजः प्रणाम समये यत्पादपङ्कजयुगं कुम्भद्वन्द्वे विनिधाय अस्य जगत्त्रयस्य विघ्नान् विहन्तुं अलं समर्थो भवति, तं आदिपुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥५०॥

विधानकर्त्ता व्यष्टिसृष्टिकर्त्ता भवतीत्यर्थः। यद्वा महाब्रह्मैवायं वर्ण्यते, तदुपलक्षितो महाशिवश्च ज्ञेयः। ततश्च जगदण्डानां विधानकर्त्तृत्वञ्च युक्तमेव। यद्यपि दुर्गाख्या माया कारणार्णव शायिन एव कर्मकरी, यद्यपि च ब्रह्मविष्णवाद्या गर्भोदकशायिन एवावताराम्तथापि तस्य सर्वाश्रयतया तेऽपि तदाश्रिततया गणिताः। एवमुत्तरत्रापि ॥४९॥

अथ सर्वे सर्वविघ्ननिवारणार्थं प्रथमं गणपतिं स्तुवन्तीति तस्यैव स्तुतियोग्यतेत्याशङ्कया प्रत्याचष्टे—यत् पादेति। कैमुत्येन तदेवं दृढ़ीकृतं श्रीकपिलदेवेन,—यत्पादनिःसृत सरित् प्रवरोदकेन
तीर्थेन मूर्द्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूदिति॥५०॥

मणिसमूह में किञ्चित् निज तेजः को प्रकटित कर उसे प्रदीप्त करती हैं उस प्रकार जो ब्रह्माण्ड विधानकर्त्ता ब्रह्माको भी सृष्टिशक्ति प्रदान करते हैं, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूं। भास्वान् सूर्य, जिस प्रकार निज नित्य स्वीयरूपसे विख्यात अश्म सकल में सूर्य्यकान्त नामक प्रस्तर में स्वीय किञ्चित्तेजः को प्रकट करते हैं। अपि शब्दसे तद् उपाधि अंशसे दाहादि कार्य भी स्वयं ही करते रहते हैं, उस प्रकार जो ही जीव विशेष में किञ्चित्तेजः प्रकट करते हैं, उस उपाधि अंशसे स्वयं ब्रह्मा होकर जगदण्डरूप ब्रह्माण्ड में विधानकर्त्ता व्यष्टि सृष्टिकर्त्ता होते हैं। अथवा, इस प्रकरण में महा ब्रह्माका ही वर्णन है। उपलक्षण से महाशिव को भी जानना होगा।

अग्निर्महीगगनमम्बुमरुद्दिशश्च
कालस्तथात्ममनसीतिजगत्त्रयाणि ।
यस्माद् भवन्ति विभवन्ति विशन्ति यश्च
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥५१॥

अग्निर्मही गगनमम्बुमरुद्दिशश्च कालस्तथात्ममनसीति जगत्त्रयाणि भवन्ति विभवन्ति यं च विशन्ति तं आदि पुरुषं गोविन्द अहं भजामि ॥५१॥

तश्च युक्तमित्याह-अग्निर्महीति । सर्वं स्पष्टम् ॥५१॥

अतएव ब्रह्माण्ड का विधान कर्त्तृत्व आप में ही है । यद्यपि दुर्गाख्या माया कारणार्णवशायी की ही कर्मकरी हैं, यद्यपि ब्रह्मा विष्णु प्रभृति गर्भोदकशायि के ही अवतार होते हैं, तथापि श्रीकृष्ण सर्वाश्रय होने से ही उनसब की उनके आश्रित रूप में गणना की गई हैं, इस प्रकार उत्तर प्रकरण में भी अर्थ करलेना आवश्यक है ॥४९॥

सकल विघ्न विनाशार्थ प्रथम श्रीगणपति का स्तव करते हैं, अतः आदि पुरुष रूपमें स्तुति आपकी होनी चाहिए ? समाधान करते हैं, श्रीगणपति भी प्रणाम के समय जिनके चरण पङ्कज युगल को निज मस्तक में स्थापन कर इस जगत के समस्त विघ्ननाश करने में समर्थ होते हैं, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ । कैमुत्य न्याय से उक्तसिद्धान्त को दृढ़ करने के लिए श्रीकपिल देव कहते हैं, जिसके चरणारविन्द से निःसृत तीर्थवारि को मस्तक में धारण कर शिव भी मङ्गलमय शिव होगए हैं, मैं उन श्रीगोविन्द देव का भजन करता हूँ ॥५०॥

अग्नि, पृथिवी, आकाश, जल, बायु, दिक् सकल, काल, आत्मा, मन एवं भुवनत्रय जिन से उत्पन्न होते हैं, जिन में स्थित होते हैं, जिन में प्रविष्ट होते हैं, उन आदिपुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूँ ॥५१॥

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणाम्
राजासमस्तसुरमूर्त्तिरशेषतेजाः
यस्याज्ञया भ्रमति सन्ततकालचक्रो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥५२॥
धर्मोऽथ पापनिचयः श्रुतयस्तपांसि
ब्रह्मादिकीटपतगावधयश्च जीवाः।

सकल ग्रहाणां राजा समस्त सुरमूर्त्तिः अशेषतेजाः एषः सविता यच्चक्षुः भवति, सोऽपि सन्ततकाल चक्रे यस्य आज्ञया भ्रमति तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥५२॥

केचित् सवितारं सर्वेश्वरं वदन्ति यथाह-यच्चक्षुरिति, य एव चक्षुः प्रकाशको यस्य सः। यदादित्यगतं तेजो जगद्भाषयतेऽखिलम् यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजोविद्धि मामकम्। इति गीताभ्यः। भीषास्माद्वातः पवते भीषीदेति सूर्य्यः" इत्यादि श्रुतेः। विराट्-रूपस्यैव सवितृचक्षुष्टाच्च ॥५२॥

कतिपय व्यक्ति सविता को सर्वेश्वर कहतेहैं, किन्तु सकलग्रहों के अधीश्वर, देवमूर्त्ति अतितेजस्वी सूर्य जिनकी आज्ञा से विस्तृत कालचक्र में भ्रमण करते रहते हैं, जो उनके भी चक्षुस्वरूप हैं अर्थात् प्रकाशक हैं, उन आदि पुरुष श्रीगोविन्द का मैं भजन करता हूँ॥ जो गौविन्द ही चक्षुः प्रकाशक है जिनका वह, श्रीगीता में उक्त हैं, आदित्य में जो तेज हैं, जिस से अखिल जगत् उद्भासित होते रहते हैं, चन्द्रमा एवं अग्नि में जो तेज है, वह तेज मेरा ही है, इनके भय से पवन प्रबाहित होता रहता है, भय से सूर्य उदित होते हैं इत्यादि श्रुति का विवरण है। भगवान् के विराड् रूपका ही सविता चक्षुः है ॥५२॥

अनन्तर अधिक कहना क्या है, धर्म, पाप समूह, वेद समूह तपस्या, ब्रह्मादि कीट पतङ्ग पर्यन्त जीव समूह जिन के द्वारा प्रदत्त

यद्दत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावा:
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥५३॥
यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म
बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।
कर्माणि निर्द्दहति किन्तु च भक्तिभाजाम्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥५४॥

अथ धर्मः पापनिचयः श्रुतयः तपांसि ब्रह्मादि कीट पतगावधयः च जीवाः यद्दत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावाः भवन्ति तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥५३॥

अहो यः तु इन्द्रगोपं अथवा इन्द्रं स्वकर्मबन्धानुरूपफल भाजनं आतनोति, किन्तु भक्तिभाजां च कर्माणि निर्द्दहति, तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥५४॥

किं वहुना धर्म इति–अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते" इति श्रीगीताभ्यः ॥५३॥

अतएव सर्वेश्वरस्तु पर्ज्जन्यवद् द्रष्टव्यः इति,–न्यायेन कर्मानुरूपफलदातृत्वेन साम्येऽपि भक्ते तु पक्षपातविशेषं करोतीत्याह–यस्त्विन्द्रेति । समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः । ये

वैभव से ही निज निज प्रभाव को प्रकट करते हैं, उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूँ । श्रीगीतामें कथित है—मैं सवके उत्पत्तिस्थल हूँ, सवकी प्रेरणा मुझ से ही मिलती है ॥५३॥

अतएव सर्वेश्वर पर्ज्जन्य के समान समदर्शी होतेहैं, इस नियम से आप समान कर्म फल दाता हैं, अर्थात् इन्द्रगोप वर्षाकालीन एक प्रकार क्षुद्र रक्तवर्ण के कीट विशेष से आरम्भकर इन्द्र पर्य्यन्त सव को निज निज कर्मानुरूप फलप्रदान करते रहते हैं, किन्तु भक्ति परायण व्यक्तियों को कर्मबन्ध से मुक्त करते हैं, मैं उन आदि पुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ । श्रीगीता में उक्त है—मैं समस्त

यं क्रोधकामसहजप्रणयादिभीति
वात्सल्यमोहगुरगौरवसेव्यभावैः ।
सञ्चिन्त्य तस्य सदृशीं तनुमापुरेते
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥५५॥

क्रोधकामसहजप्रणयादिभीतिवात्सल्यमोहगुरुगौरवसेव्यभावैः एते यं सञ्चिन्त्य तस्य सदृशीं तनु आपुः तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि ॥५५॥

भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ इति, अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्" इति च श्रीगीताभ्यः ॥५४॥

य एव च वैरिभ्योऽप्यन्यदुर्ल्लभफलं ददाति किमुत स्वविषयक कामादिना निष्कामश्रेष्ठेभ्यः, ततः को वान्यो भजनीय इति भजामीत्यन्तप्रकरणमुप संहरति यं क्रोधेति। सहजप्रणय सख्यं। वात्सल्यपित्राद्युचितभावः। मोहः सर्वविस्मरणमयभावः। परब्रह्मतयास्फूर्त्तिः। गुरुगौरवंस्वस्मिन् पितृत्वादिभावनामयम्। सेव्योऽयं ममेति भावना दास्यमित्यर्थः। तस्य सदृशीं क्रोधावेशिनो-

---

प्राणीयोंके प्रति सम व्यवहार करताहूँ कोई भी मेरा शत्रु तथा मित्र नहीं है, किन्तु जो जन मेरा भजन करता है, वह मेरा है, और मैं उसका हूँ। जो जन अनन्य भाव से मेरी उपासना भक्ति योग से करते हैं, उन नित्याभियुक्त व्यक्ति को योगक्षेम का निर्बाह मैं स्वयं करता हूँ तथा उसप्रीति का यथावत् संरक्षण भी मैं ही करताहूँ ।५४।

जो व्यक्ति जव वैरि को भी अन्यदुर्ल्लभ फल प्रदान करते हैं तव निष्कामी श्रेष्ठव्यक्ति से भी परम श्रेष्ठ परमासक्ति द्वारा श्रीकृष्ण के आनुकूल्य जो जन करते रहते हैं, उनको तो सर्वोत्तम फल प्रदान करेंगे ही, उस प्रकार परमोदार को छोड़कर अपर कौन भजनीय होगा, यह कहकर उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूँ–

ऽप्राकृत मात्रांशेन, तु तत्तद् भावना योग्यरूप गुणांश लाभतारतम्येन तुल्यमित्यर्थः ।। "अदृष्टान्यतमं लोके शीलौदार्य्यगुणैः सममिति श्री वासुदेव वाक्यस्य । जगद्व्यापारवर्ज्जमिति ब्रह्मसूत्रस्य, प्रयोज्यमानेमयि तां शुद्धां भागवतीं तनुमिति श्रीनारद वाक्यस्य च दृष्टया सर्वथा तत्सदृशत्वे विरोधात्, वैरेण यं नृपतयः " इत्यादौ अनुरक्तधियां, पुनः किम् इत्यनुरक्तधीषु सुष्ठिति प्राप्तस्तेष्वपि तदनुरागतारतम्येनापि तत्तारतम्यं लभ्यते" इति' अनेन गोलोकस्थप्रपञ्चावतीर्णयोरेकत्वमेव दर्शितम् तदुक्तं-नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा' इत्यादि ।५५

इस प्रकरण को समाप्त करते हैं, क्रोध शत्रुभाव, सहज प्रणय सख्य, काम-तद्विषयक कामना, वात्सल्य-पित्राद्युचित भाव, मोह-सर्व विस्मरणमय भाव, परब्रह्मरूप से स्फूर्त्ति । गुरु गौरव-अपने में पितृत्वादि भावनामय भाव, सेव्यभाव,-वह मेरा सेव्य है इस प्रकार भावना, अर्थात् दास्यभाव, यह सव भाव के द्वारा जिन की चिन्ता कर सकलव्यक्ति भावानुरूप स्वरूप को प्राप्त करते हैं मैं उन आदि पुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ । भाव के सदृश तनु प्राप्ति का नियम इस प्रकार है-क्रोधावेशि के लिए अप्राकृत विषय में आविष्ट होने से उस अप्राकृत अंश में ही सायुज्य मुक्ति होती है, उस से भिन्न व्यक्तियों के लिए उन उन भावना के योग्य रूप गुणों के अंश लाभ के तारतम्य से तुल्य तनु की प्राप्ति होती है, श्रीवासुदेव की पुत्र रूप से चाहने से श्रीवासुदेव ने देखा कि कोई भी व्यक्ति उनके समान शील स्वभाव उदारता गुण सम्पन्न नहीं है, जगद् व्यापार को छोड़ कर ही उपासक को योग्यता प्रदान करते हैं । श्रीनारद जीने भी कहा है, जव मैं भक्ति भाव से योग्य वनाथा उस समय शुद्ध सच्चिदानन्दमयभागवती तनु मुझे देने की श्रीहरि की इच्छा हुई । इस वाक्य से ज्ञात होता है कि, सर्वथा उनके सदृश अपर वस्तु नहीं होती है, वैरभाव से राजन्यवर्ग जिनको प्राप्त किए हैं, प्रवल अनुराग से जो उनको प्राप्तकरेंगे, यह अधिक क्या है ? इस में वैरभाव एवं अनुरक्त बुद्धि उभय में जिस प्रकार अन्तर है, उस प्रकार स्वरूप

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम् ।
कथागानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च ॥

तदेवं निजेष्टदेवं भजनीयत्वेन स्तुत्वा तेन विशिष्ट तल्लोकं तथा स्तौति-कान्ताः श्रियः, परमपुरुषः कान्तः कल्पतरवः द्रुमाः चिन्तामणिगणमयी भूमिः, अमृतं तोयम्, गानं कथा,गमनं अपि नाट्यं, प्रियसखी वंशी, चिदानन्दं ज्योतिः, परम् अपि तत् आस्वाद्यं अपि च, यत्र सुरभीभ्यः च सुमहान् सः क्षीराब्धिः सरति । यत्र निमेषार्द्धाख्यः वा समयः अपि नहि व्रजति । तं अहं इह श्वेतद्वीपं भजे यं गोलोकं इति ते कतिपये क्षितिविरलचाराः विदन्तः ॥५६॥

तदेवं निजेष्टदेवं भजनीयत्वेन स्तुत्वा तेन विशिष्टं तल्लोकं तथा स्तौति-श्रियः कान्ता इति युग्मकेन । श्रियः श्रीव्रजसुन्दरी रूपास्तासामेव मन्त्रे ध्याने च सर्वत्र प्रसिद्धेः । तासामनन्तामप्येक एव कान्तः" इति परम नारायणादिभ्योऽपि तस्य तत्तल्लोकेभ्योऽपि तदीय लोकस्य चास्य माहात्म्यं दर्शितम् । कल्पतरवो द्रुमाः" इति तेषां सर्वेषामेव सर्व प्रदत्वात्त्वात्तथैव प्रथितम् ॥ भूमिरित्यादिकञ्च तद्वद् भूमिरपि सर्वस्पृहां ददाति किमुत कौस्तुभादि । तोयमप्यमृतमिव

प्राप्ति में भी अन्तर है। उत्तम प्राप्ति तो अनुरक्त जनों की होती है, उस में जिस में जिस प्रकार अनुराग है, उस के अनुरूप ही प्राप्ति होती है, इस विवरण से पता चला कि गोलोक एवं गोलोक से जो भी परिकर भौम वृन्दावन में अवतीर्ण होते हैं उन दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है, दोनों में एकता ही है। उसको कहा भी नन्दादि गोप गण ब्रह्म ह्रद में सकल वैभव को देखकर आनन्द से विस्मित हो गये थे ॥५५॥

उस प्रकार निज इष्ट की भजनीयत्वेन स्तुति करके इष्टदेव

स यत्र क्षीराब्धिः सरति सुरभीभ्यश्च सुमहान्
निमेषार्द्धाख्यो वा व्रजति नहि यत्रापि समयः ।
भजेश्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमिति यम्
विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये ॥५६॥

स्वादु किमुतामृतमित्यादि। वंशीप्रियसखीति सर्वतः श्रीकृष्णस्य सुखस्थितिश्रावकत्वेन ज्ञेयम्। चिदानन्दलक्षणं वस्त्वेव ज्योतिश्चन्द्रसूर्य्यादिरूपं। समानोदितचन्द्रार्कम्" इति वृन्दावनविशेषणम् गौतमीयतन्त्रद्वये। तच्च नित्य पूर्णचन्द्रत्वात्तथा तदेव परमपि तत्तत् प्रकाश्यमपीत्यर्थः। तथा तदेव तेषामास्वाद्यं भोग्यमपि च चिच्छक्ति मयत्वादिति भावः। दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्" इति श्रीदशमात्। हयशीर्षपञ्चरात्रे च वैकुण्ठस्थतत्त्वनिरूपणे-- द्रव्यतत्त्वं शृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि समासतः। सर्वभोगप्रदा यत्र पादपाः कल्पपादपाः॥ गन्धरूपं स्वादुरूपं द्रव्यं पुष्पादिकञ्चयत् हेयांशानामभावाच्च रसरूपं भवेच्च तत्। त्वग्वीजं चैव हेयांशं कठिनांशं

विशिष्ट उनके लोक का स्तव करते हैं। जिस स्थान में परमलक्ष्मी स्वरूपा श्रीकृष्ण प्रेयसी श्रीव्रज सुन्दरीगण ही कान्तावर्ग हैं, परम पुरुष स्वयं भगवान् श्रीपुरुषोत्तम श्रीगोविन्द ही कान्त हैं, समस्त पदार्थ प्रदान समर्थ यथार्थ कल्पतरुगणही वहाँ के ब्रह्म समूहहैं, भूमि-चिन्तामणि गणमयीहै, अर्थात् तेजोमयी एवं वाञ्छितार्थ प्रदायिनी है, जल—अमृत तुल्य सुस्वादु है, कथा ही गान है, साधारण गति ही नृत्य तुल्य है, वंशीप्रिय सखीके समान प्रिय कार्य्य साधिका है, चिदानन्दमय जो ज्योतिः है, वह ही चन्द्र सूर्य्यादि स्वरूप सर्ववस्तु प्रकाशक है, तत्तत् प्रकाश्य परम पदार्थ समूह ही आस्वाद्य है। श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि से वहाँ के धेनवृन्द से जो दुग्ध धारा क्षरित होती है, वह ही सुमहान् क्षीराब्धिस्वरूप हैं, वहाँ निमेषार्द्ध समय भी अतिवाहित नहीं होता है, अर्थात् वहाँके परिकर वर्ग निजेष्ट सेवा में इस प्रकार आविष्ट रहते हैं कि समय का अनुसन्धान उनसब का

च यद् भवेत् । सर्वं तद्भौतिकं विद्धि नहि भूतमयं हि तत्'' रसवद् भौतिकं द्रव्यं अत्र स्याद्रस रूपकम् । इति । सुरभीभ्यश्च सरतीति त्वदीयवंशीध्वन्याद्यावेशादिति भावः । व्रजति नहीति-तदावेशेन ते तद्वासिनः कालमपि न जानन्तीति भावः । कालदोषास्तत्र न सन्तीति वा, "न च काल विक्रमः" इति द्वितीयात्, अतएव श्वेतं शुद्धं द्वीपं

का नहीं रहता है, पक्षान्तर में लौकिक काल का प्रभाव वहाँपर नहीं है। उसको श्वेतद्वीप कहते हैं, श्वेत शब्द का अर्थ-परमविशुद्ध है, 'द्वीप' शब्द का अर्थ अन्य के साथ-अमिश्रित है। श्रीगोविन्द के निवासस्थान इस श्रीगोलोक को अति विरल परम प्रसिद्ध कतिपय परम प्रेमाविष्ट वैष्णव सज्जनवृन्द ही जानते हैं, उन धाम का मैं भजन करता हूँ। श्रीशब्द से व्रजसुन्दरीका बोध होता है, मन्त्र में ध्यान में उनका ही वर्णन आता है, उन अनन्त श्रीरूपा व्रजसुन्दरीयों के एक ही कान्त है-श्रीगोविन्द। इस से परम नारायणादि से भी एवं उन उन वैकुण्ठ लोकों से भी गोलोक रूप गोविन्द वैकुण्ठ का माहात्म्य अधिक हैं। कल्पतरु गण ही वहाँके वृक्ष हैं, वहाँ के सकल व्यक्तियों के लिए सब कुछ प्रदाता हैं, भूमि भी कल्पतरु के समान सर्व कामनाप्रद है, कौस्तुभादि की कथा तो दूसरी है। जल भी अमृत के समान स्वादु है, अमृत की कथा ही क्या है। श्रीकृष्ण की प्रियस्थिति का श्रावक रूप में वंशी ही प्रियसखी का कार्य्य करती है, अधिक और कहना ही क्या है, चिदानन्द स्वरूप वस्तु ही वहाँ प्रकाश प्रद चन्द्रसूर्य्य रूप हैं, गौतमीय तन्त्रद्वय में लिखित है—वृन्दावन में समान रूप से चन्द्र एवं सूर्य्य उदित होते हैं, । नित्य पूर्णचन्द्र उदित होने से उनसे प्रकाश्य भी सच्चिदानन्दमय हैं। उन सब के आस्वाद्य भोग्य भी चिच्छक्तिमय है, श्रीदशम से ज्ञात होता है कि गोपों को प्रकृति अतीत निज लोकका दर्शन गोपों को करवाये थे। हयशीर्ष पञ्चरात्र के वैकुण्ठ तत्त्व निरुपण में कथित है, हे ब्रह्मन् ! द्रव्य तत्त्व की श्रवण करो, मैं संक्षेप से कहता हूँ। जहाँपर ब्रह्म समूह सर्व भोगप्रद कल्पतरु हैं। गन्धरूप, स्वादुरूप द्रव्य, पुष्प प्रभृति

अथोवाच भगवान् भगवन्तं कमलयोनिम् ।
ब्रह्मन्महत्त्वविज्ञाने प्रजासर्गे च चेन्मतिः ।
पञ्चश्लोकीमिमां विद्यां वत्स दत्तां निबोध मे ॥५७

अथ भगवान् भगवन्तं कमलयोनिं उवाच, ब्रह्मन् ! महत्त्व विज्ञाने प्रजासर्गे च चेत् मतिः स्यात्, हे वत्स ! तदा मे पञ्चश्लोकीं इमां दत्तां विद्यां निबोध ॥५७॥

अन्यासङ्ग रहितम् । यथा सरसि पद्मं तिष्ठति तथा भूम्यां हि तिष्ठति इति तापनीभ्यः'' क्षितीति । तदुक्तं यं न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम्'' इति ॥५६॥

तदेवं तस्य स्तुतिमुक्त्वा श्रीभगवत् प्रसादलाभमाह--अथेति सर्वं स्पष्टम् ॥५७॥

में हेयांश नहीं है सब रस रूप है, भौतिक में त्वक् बीज हेयांश कठिनांश होते हैं, वह लोक भौतिक नहीं है, भौतिक द्रव्य रसवत् होता है, अभौतिक द्रव्य, रस स्वरूप होता है. श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि के आवेश से तत्रत्य सुरभीयों से दुग्धधारा क्षरित होती है । व्रजवासिगण श्रीकृष्णावेश से कालानुसन्धान रहित हैं । उनसब में कालकृत दोष नहीं है. द्वितीय स्कन्ध में वर्णित है काल का विक्रम वहाँपर नहीं है अतएव श्वेत, शुद्ध द्वीप है, वह अन्यासङ्ग रहित है, जिस प्रकार सरोवर में कमल रहता है. उस प्रकार भूमि में श्रीवृन्दावन प्रभृति निर्लिप्त है, यह तापनी का संवाद है, इस तत्थ्य को विरल व्यक्ति ही जानते हैं । कहा भी है—हमसब पितामह को पुछ कर भी वृन्दावन के तत्त्व को जान न सके ॥५६॥

स्तुति कथनानन्तर श्रीभगवत् प्रसादलाभ का विवरण कहते हैं-श्रीभगवान् श्रीकृष्ण, कमलयोनि ब्रह्माको कहे थे, हे ब्रह्मन् ! यदि मदीय महत्त्व को जानने एवं प्रजा सृजन करने में तुम्हारी मति हो तो मेरी दी हुई पञ्चश्लोकी विद्या को जानो ॥५७॥

प्रबुद्धे ज्ञानभक्तिभ्यामात्मन्यानन्दचिन्मयी ।
उदेत्यनुत्तमाभक्ति र्भगवत् प्रेमलक्षणा ॥५८॥
प्रमाणैस्तत् सदाचारैस्तदभ्यासैर्निरन्तरम् ।
बोधयत्यात्मनात्मानं भक्तिमप्युत्तमांलभेत् ॥५९॥

ज्ञानभक्तिभ्यां आत्मनि प्रबुद्धे सति आनन्दचिन्मयी भगवत् प्रेमलक्षणा अनुत्तमा भक्तिः उदेति ॥५८॥

प्रमाणैः तत्सदाचारैः निरन्तरं तदभ्यासैः आत्मना आत्मानं यः बोधयति सः अपि उत्तमां भक्तिं लभेत् ॥५९॥

तत्र प्रसाद रूपां पञ्चश्लोकीमाह--प्रबुद्ध इति । "ज्ञानविज्ञान सम्पन्नो भज मां भक्तिभावितः "इत्येकादशात् ॥५८॥

प्रसाद रूप पञ्चश्लोक को कहा, एकादशस्कन्ध में भी आपने कहा है, ज्ञान विज्ञान सम्पन्न होकर भक्ति भावित अन्तः करण से मेरा भजन करो, भगवत्तत्त्वज्ञान एवं भक्ति के द्वारा आत्मा प्रबुद्ध होने से उस में आनन्दचिन्मयी रूपा भगवत् प्रेमलक्षणा उत्तमा भक्ति का उदय होता है ॥४८॥

प्रेमलक्षण भक्ति, साधनलक्षण भक्ति, एवं ज्ञानरूप भक्तिप्राप्ति का उपाय कहते हैं। भक्तिशास्त्र प्रमाण के अनुसार भगवद् भक्त सज्जनगण के सदाचार का अनुष्ठान से एवं भजनाङ्ग का निरन्तर अभ्यास के द्वारा निजको प्रबुद्ध करने से भी उत्तमा भक्ति लाभ होता है। प्रमाण समूह द्वारा अर्थात् भगवद् वर्णित श्रीगीता भागवतादि शास्त्र के द्वारा सदाचार द्वारा–श्रीगीताभागवत–एवं तदनुगत भक्ति शास्त्र समूह के अनुशासन से भक्ति आचरणकारी निष्कपट व्यक्ति गण को सत् कहतेहैं, उनके आचरण के अनुरूप आचरण अनुष्ठान से, उस के अभ्यास से, अर्थात् उन सब आचरण को निर्दुष्ट रूप से जान कर पुनः पुनः अधिक से अधिक रूपसे अनुष्ठान कर जो व्यक्ति आत्म बोध करता है, अर्थात् वह स्वयं ही स्वयं को भगवद् आश्रित शुद्ध

यस्याः श्रेयस्करं नास्ति यया निर्वृतिमाप्नुयात् ।
या साधयति मामेव भक्ति तामेव साधयेत् ॥६०॥

यस्याः श्रेयस्करं नास्ति, यया निर्वृतिमाप्नुयात् या मां साधयति एव, तां भक्ति एव साधयेत् ॥६०॥

प्रेमलक्षणभक्ते; साधनज्ञानरूपयोः भक्त्योः प्राप्त्युपायमाह-प्रमाणैरिति । प्रमाणै भंगवच्छास्त्रैः तत् सदाचारै स्तदीया ये सन्त स्तेषामाचारै रनुष्ठानै स्तदभ्यासैस्तेषामेव पौनःपुण्येन बाहुल्येन आत्मना आत्मानं बोधयति स्वयमेव स्वं भगवदाश्रितः शुद्धजीव रूप-मनुभवति, ततोऽप्युत्तमां शुद्धां भक्ति लभत इति । तथाच श्रुतिस्तवे स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसम्वरणं, तव पुरुषं वदन्त्यखिल शक्ति-धृतोऽशं कृतम् । इति नृगति विविच्य कवयो निगमावपनं, भवत उपासते अङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥इति॥५८॥

जीवरूप में अनुभव करता है, जन्म कर्म वर्ण आश्रम जाति प्रभृति संस्कार से अपने को आच्छन्न नहीं करता है तो उस से भी उत्तमा भक्ति अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम् आनुकूल्येन कृष्णानु शीलनं भक्तिरुत्तमा" लक्षणा भक्ति का अधिकारी होता है, शुद्धात्मा में ही भगवत् कृपा से चिदानन्दमयी भक्ति का आविर्भाव होता है, अशुद्ध आत्मा में नहीं, भक्ति है सेवा, भजनीय के सुख के लिए ही आत्मार्पणकर ममत्व से कार्य करना ही भक्तिहै, वद्ध आत्मा सकामी है, वह शरीरेन्द्रिय के लिए ही सेवा का भान करता है, वह वणिक वृत्ति से चलता है । श्रुति स्तव में उसका विशद् विवेचन है, शरीर एव ब्रह्माण्ड समूह के अन्तर वाहर नियन्त्रण कारी जो भी पुरुष हैं, वह स्वतन्त्र नहीं है, श्रीहरि के ही अंश है, इस प्रकार सत्य ज्ञान प्राप्त कर मनीषिगण मनुष्य की सकामीस्थिति को जानलेते हैं और वेदोक्त सकामकर्म को छोड़कर परम निष्काम कर्म जो उत्तमा भक्ति है उसके द्वारा विश्वस्त होकर आप के श्रीचरणारविन्दों का भजन पृथिवीमें रहकर करतेहैं, कारण वह चरणही भवभयनिवारकहै ॥५६॥

धर्मानन्यान् परित्यज्य मामेकं भज विश्वसन्
यादृशी यादृशी श्रद्धा सिद्धिर्भवति तादृशी ।
कुर्वन्निरन्तरं कर्म लोकोऽयमनुवर्त्तते ।
तेनैव कर्मणाध्यायन् मां परां भक्तिमिच्छति ॥६१॥

तथा च प्रेमभक्तिरेव साध्या, नान्येत्याह--यस्याः इति, तदुक्तं चतुर्थे २४।५५--तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया। एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत् पादमूलं विना वहिः ॥'' इति'' भक्त स्तादृशत्वं भक्ति सन्दर्भे सुष्ठु विवृतमस्ति ॥६०॥

अन्यान् धर्मान् परित्यज्य विश्वसन् सन् मां एकं भज, श्रद्धा यादृशी यादृशी, तादृशी सिद्धि भंवति। अयं लोकः निरन्तरं कर्म कुर्वन् अनुवर्त्तते, तेनैव कर्म्मणा मां ध्यायन् परां भक्ति इच्छति ॥६१

पुनः शुद्धामेव साधनभक्ति द्रढ़यन्नन्यकामैरपि तामेव कुर्यादि त्याह,—धर्मानन्यानिति। तदुक्तं, अकामसर्वकामोवामोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्'' इति ॥६१॥

तथाच प्रेमभक्ति ही साध्य है, अपर कोई वस्तु नहीं जिस से श्रेयस्कर अपर वस्तु नहीं है, जिस से परमानन्द की प्राप्ति होती है, जो मुझ को प्राप्त कराने में समर्थ है, उन भक्ति का साधन ही करें। चतुर्थस्कन्ध के २४।४५ में कहा है, सज्जनों के लिए भी दुर्लभ एकान्त भक्ति द्वारा दुराराध्य श्रीकृष्ण को आराधना करके कौन ऐसा जनहै, जो श्रीकृष्ण के चरणारविन्दकी सेवा को छोड़कर अहङ्कार बुद्धि के विषय का अभिलाषी होगा ? उपरोक्त स्वरूपाक्रान्त भक्ति का विवेचन भक्ति सन्दर्भ में उत्तम रूप से किया गया है ॥६०॥

पुनः शुद्ध साधन भक्ति का स्थापन सुदृढ़ रूप से करने के लिए सकामीव्यक्तिगण भी उक्त भक्ति का ही अनुष्ठान करें दूसरे का नहीं। अन्य समस्त धर्म्म का परित्याग कर एकमात्र मुझे विश्वास कर मेरा ही भजन करे। श्रद्धा जिस प्रकार होगी, सिद्धि भी उस प्रकार होगी, श्रीमद् भागवत में उक्त है, निष्काम हो अथवा सर्व

अहं हि विश्वस्य चराचरस्य
बीजं प्रधानं प्रकृतिः पुमांश्च ।
मयाहितं तेज इदं विभर्षि
विधे विधेहि त्वमथो जगन्ति ॥६२॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायामिति । तदुक्तं तत्रैवान्यत्र-
अध्यायशतसम्पन्ना भगवद्ब्रह्मसंहिता ।
कृष्णोपनिषदां सारैः सञ्चिता ब्रह्मणोदिता ।इति
यद्यपि नानापाठान्नानार्थान् स्मरन्ति नाना ते ।
तदपि च सत्पथलब्धा एवास्माभिस्त्वमी प्रमिताः ॥

चराचरस्य विश्वस्य अहं हि प्रधानं, वीजं, प्रकृतिः पुमान् च मया आहितं इदं तेजः विभर्षि, अथ त्वं जगन्ति हे विधे ! विधेहि कुर्विवति ॥६२॥

तस्मात्तव सिसृक्षापि फलिष्यतीतिसयुक्तिकमाह—अहं होति प्रधानं श्रेष्ठं बीजं, पूर्णभगवद्रूपं, प्रकृतिरव्यक्तं, पुमान् तद् द्रष्टा, किं वहुना, त्वमपि मया आहितं अर्पितं तेज इदं विभर्षि, तस्मात्तेन मत्तेजसा जगन्ति सर्वाणि स्थावर जङ्गमानि, हे विधे ! हि कुर्विवति ॥६२॥

काम हो, अथवा मोक्षकामी हो, अनन्य भक्ति योग के द्वारा परम पुरुष श्रीकृष्ण की ही आराधना करे। इस जगत् में मानवगण निरन्तर कर्म करते रहते हैं, उक्त कर्म समूह द्वारा मेराध्यान कर, भक्ति प्राप्ति की इच्छा करें ॥६१॥

अतएव तुम्हारी विश्व सृजन करने की इच्छा फलीभूत होगी, करण, में चराचर विश्व ब्रह्माण्ड प्रधान,—श्रेष्ठ बीज मूल कारण स्वरूप पूर्ण भगवान्, प्रकृति अर्थात् अव्यक्त नामिका त्रिगुणात्मिका वहिरङ्गा शक्ति, एवं उसका द्रष्टा पुरुष हूं। अधिक और मैं क्या कहूं। तुम भी मेरे द्वारा अर्पित तेजः को धारण कर रहे हो, अतएव मेरी

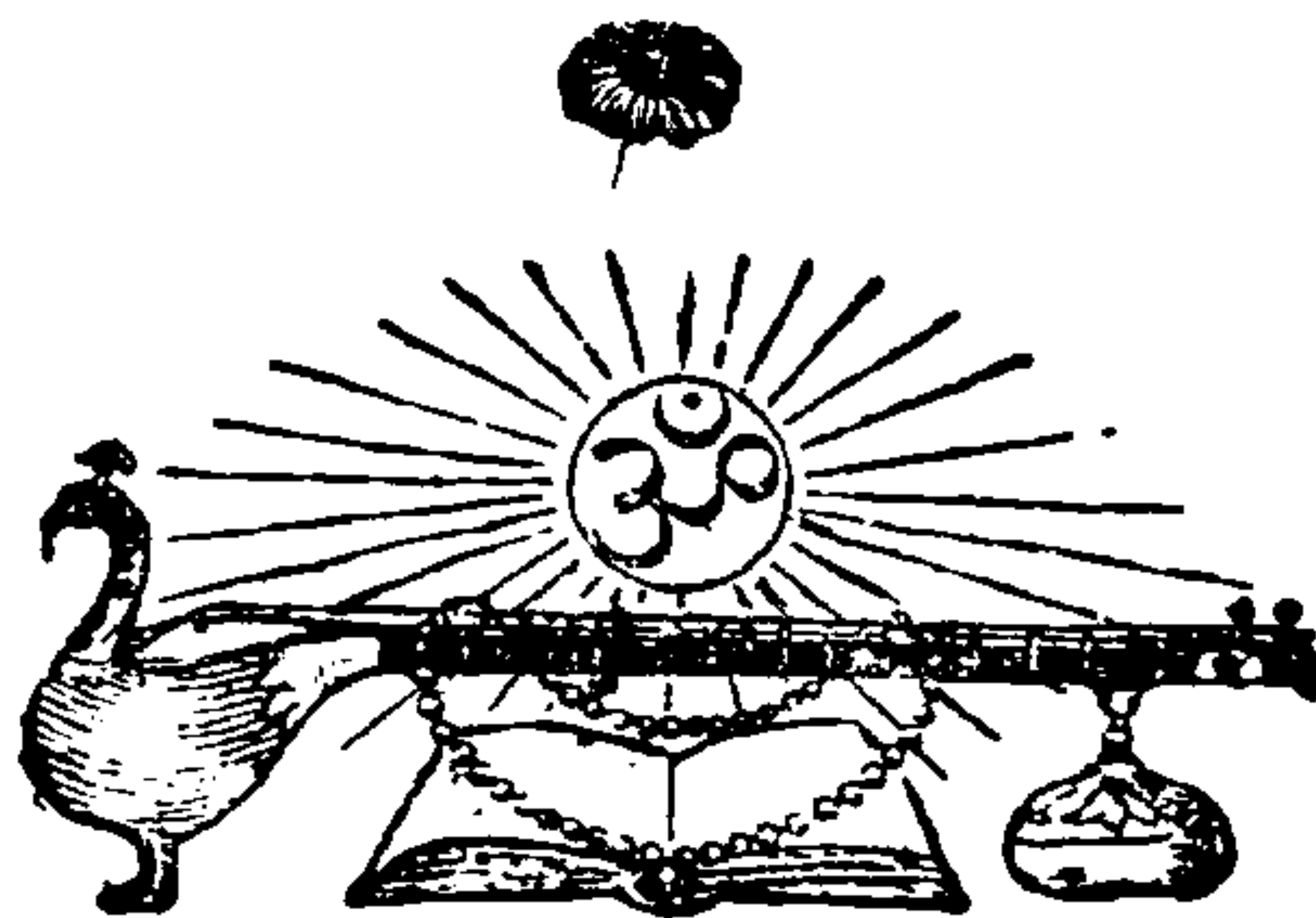
इति श्रीब्रह्मसंहितायां मूलसूत्राख्यस्य पञ्चमाध्यायस्य श्रील श्रीपाद श्रीजीवगोस्वामिकृता दिग्दर्शिनी" नाम्नी टीका समाप्ता ।

उस तेज के द्वारा समस्त स्थावर जङ्गमात्मक विश्व का सृजनकरो ।

ब्रह्म संहिता में एवं अन्यत्र कथित है—कि शतअध्याय सम्पन्न भगवद् ब्रह्मसंहिता श्रीकृष्णोपनिषद् के सारार्थ द्वारा ब्रह्मा जीने संग्रह किया है । अर्थात् शतअध्याय ब्रह्म संहिता का यह अध्याय सार सङ्कलन है । यद्यपि इसके अनेक पाठ से अनेक प्रकार अर्थ भी होते रहते हैं, तथापि, सदाचार प्रमाण के द्वारा हमने इसका पाठ तथा अर्थ का निर्णय किया है ।

इति श्रीब्रह्मसंहितास्थशताध्याय के सूत्ररूप पञ्चमाध्याय की श्रील जीवगोस्वामिकृता दिग् दर्शनी नामिका टीका समाप्ता ।

श्रीगान्धर्वा प्रसादेन हरिदासेन शास्त्रिणा
पूरिता विमलाटीका सज्जनानाञ्चतुष्टये ।।









श्रीचैतन्यपञ्चशती के उपलक्ष्य में

अनुपम उपहार

श्रीब्रह्मसंहिता

श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्

जिसमें

* परमरसचमत्कार माधुर्य्यसीमा श्रीराधा का—

* प्रेम नामक अद्भुतार्थ का—

* वृन्दाविपिन महामाधुरी में प्रवेश चातुरी का—

—* एकमात्र आविष्कारक *—

श्रीचैतन्यदेवकी सुविशदमहिमा वर्णित है ।

प्रेमा नामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः कस्य नाम्नां महिम्नः
को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिनमहामाधुरीषु प्रवेशः ।
को वा जानाति राधां परमरसचमत्कारमाधुर्य्यसीमा-
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परमकरुणया सर्वमाविश्चकार ।।१३०।।

प्रेम नामक परम पुरुषार्थ, जिस को पहले किसी ने भी कानों से भी नहीं सुना था, श्रीहरि नामकी महिमा को भी लोक इससे पहले जानते नहीं थे, श्रीवृन्दावन की परम माधुरी जिस में किसीका भी कभी प्रवेश नहीं हुआ, परमाश्चर्य्य मधुर माधुर्य्य रस की परा काष्ठा स्वरूपा श्रीराधा है, जिनको पहले कोई भी व्यक्ति नहीं जानते थे, एकमात्र श्रीचैतन्यचन्द्र प्रकट होकर ही इन सबका आविष्कार किए ।।१३०।।

१ वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्योपेतम्" महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासदेव प्रणीत, ब्रह्मसूत्रों के अकृत्रिम अर्थ स्वरूप श्रीमद्भागवतके पद्यों के द्वारा सूत्रार्थों का समन्वय इसमें मनोरम रूपमें विद्यमान है। ४०.००

२ श्रीनृसिंह चतुर्दशी भक्ताह्लादकारी श्रीनृसिंहदेवकी महिमा, व्रतविधानात्मक अपूर्व ग्रन्थ। ०.५०

३ श्रीसाधनामृतचन्द्रिका गोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्ण दास बाबा विरचित रागानुगीय वैष्णव पद्धति। ४.००

४ श्रीसाधनामृतचन्द्रिका (वङ्गला पयार) गोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा के द्वारा सुललित छन्दोवद्ध ग्रन्थ। ४.५०

५ श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति गोवर्द्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदासबाबा विरचित सपरिकर श्रीनन्दनन्दन श्रीभानुनन्दिनी के स्वरूप निर्णयात्मक ग्रन्थ। ३.५०

६ श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका श्रीजीवगोस्वामिपाद कृत श्रीराधासम्वलित श्रीकृष्ण पूजन प्रतिपादन का सर्वादि ग्रन्थ। २.००

७ श्रीगोविन्दलीलामृत (मूल, टीका, अनुवाद सह–१–४सर्ग) श्रीकृष्णदास कविराज कृत रागानुगीय स्मरणाङ्ग निर्वाहक ग्रन्थ। ५.५०

८ ऐश्वर्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद) श्रीवलदेव विद्याभूषण कृत भागवतीय श्रीकृष्णलीलाका क्रमबद्ध ऐश्वर्य मण्डित वर्णन, श्रीवृषभानु महाराज, एवं भानुनन्दिनीका मनोरम वर्णन इसमें है। १.५०

९ संकल्प कल्पद्रुम (सटीक, सानुवाद) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तिपाद कृत स्वारसिकी उपासनाका प्रमुख ग्रन्थ। २.००

१० चतुःश्लोकी भाष्यम् (सानुवाद) श्रीनिवासाचार्यप्रभु कृत चतःश्लोकी भागवत की स्वारसिकी व्याख्या। ३.००

११ श्रीकृष्णभजनामृत (सानुवाद) श्रीनरहरिसरकार ठक्कुर कृत अपूर्व धर्मीय संविधानात्मक ग्रन्थ।

१२ श्रीप्रेमसम्पुट (मूल, टीका, अनुवादसह) श्रीविश्व-
नाथचक्रवर्त्ती कृत भागवतीय रास रहस्यवर्णनात्मक हृदयग्राही ग्रन्थ ४.००

१३ भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद) श्रीलोका-
नन्दाचार्य प्रणीत भक्तिरहस्य परिवेषक अनुपम ग्रन्थ। ३.७५

१४ भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद बङ्गला)
श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत, भक्तिरहस्य प्रकाशक मनोहर ग्रन्थ। ३.००

१५ व्रजरीति चिन्तामणि (मूल, टीका, अनुवाद)
श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ति ठक्कुर कृत व्रजसंस्कृति वर्णनात्मक
अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ। ४.००

१६ श्रीगोविन्दवृन्दावनम् (सानुवाद) बृहद् गौतमीय
तन्त्रान्तर्गत श्रीराधारहस्य परिवेषक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ। १.५०

१७ श्रीराधारस सुधानिधि (मूल बङ्गला) श्रीप्रबोधानन्द
सरस्वतीपादकृत श्रीराधा महिमा प्रतिपादक अनुपमेय ग्रन्थ। १.७५

१८ श्रीराधारस सुधानिधि (मूल हिन्दी) ०.६०

१९ श्रीकृष्णभक्ति रत्नप्रकाश (सानुवाद) श्रीराघव
पण्डित रचित श्रीकृष्णभक्ति प्रकाशक अनुपम ग्रन्थ। ५.००

२० हरिभक्तिसार संग्रह (सानुवाद) श्रीपुरुषोत्तमशर्म
प्रणीत श्रीभागवतीय क्रमबद्ध भक्ति सिद्धान्त संग्रहात्मक ग्रन्थ। १२.००

२१ श्रुतिस्तुति व्याख्या (अन्वय, अनुवाद) श्रीपाद
प्रबोधानन्द सरस्वती कृत वेदस्तुति की व्रजलीलात्मक व्याख्या। १४.००

२२ श्रीहरेकृष्ण महामन्त्र "अष्टोत्तरशतसंख्यक" ०.४०

२३ धर्मसग्रह (सानुवाद) श्रीवेदव्यास कृत धर्मसंग्रह
श्रीमद्भागवतीय ७म स्कन्ध के अन्तिम ११, १२, १३, १४, १५
अध्यायों का वर्णन। ३,७५

२४ श्रीचैतन्य सूक्ति सुधाकर श्रीचैतन्यचरितामृत, तथा
श्रीचैतन्यभागवतीय सूक्तियों का संग्रह। ४.००

२५ सनत् कुमार संहिता (सानुवाद) व्रजीय रागानुगा
उपासना प्रतिपादक सुप्राचीन ग्रन्थ। २.५०

२६ श्रीनामामृत समुद्र श्रीनरहरि चक्रवर्ति प्रणीत श्रीमन् महाप्रभु के परिकरों का नामसंग्रह । ०.६०

२७ रासप्रबन्ध(सानुवाद)श्रीपादप्रबोधानन्द सरस्वती कृत ३.००

२८ दिनचन्द्रिका (सानुवाद)सार्वदेशिक दिनकृत्यपद्धति २.००

२९ भक्तिसर्वस्व (बङ्गाक्षरमें)प्रेमभक्तिचन्द्रिका, प्रार्थना प्रभृति सम्वलित । ५.००

३० स्वकीयात्वनिरास परकीयात्वप्रतिपादन श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती कृत । १४.००

३१ । **श्रीसाधनदीपिका** श्रीराधाकृष्णगोस्वामिपाद विरचित, मन्त्रमयी स्वारसिकी उपासना का समन्वयात्मकग्रन्थ, इसमें ऐतिहासिक एवं गवेषकों के लिए पर्याप्त सामग्री सन्निविष्ट है १०.००

३२ । **मनःशिक्षा (बंगला)** (अशीतरसान पदावली) प्राचीन कवि श्रीलप्रेमानन्द दास विरचित । ३.५०

३३ । श्रीराधारससुधानिधि (बंगला मूल, अनुवाद सह) ५.००

३४ । श्रीगोविन्दलीलामृत ५सर्ग से ११सर्ग पर्यन्त (टीका सानुवाद) २५.००

३५ । श्रीगोविन्दलीलामृत १२सर्ग से २३सर्ग पर्यन्त(टीका सानुवाद) ३०.००

३६ । श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम् ५.००

३७ । श्रीगौराङ्गचन्द्रोदय: ६.००

३८ । श्रीश्रीराधारससुधानिधि: (U.S. Dollars—9.00) ४५.००

३९ । श्रीब्रह्मसंहिता „ 3.00 २७.००

प्रकाशनरत

१ । श्रीश्रीभक्तिचन्द्रिका । २ । रायशेखरेर पदावली(बंगला)

३ । प्रमेयरत्नावली । ४ । वेदान्तस्यमन्तक: ।

मूल, टीका, अनुवाद सहित (हिन्दी)

※ अस्माभिः कमिशनं न दीयते ※